

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178853

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

H83/S53/11a

Accession No.

192793

Author

डा. स्त्री, पतुस्सन

Title

नरमेध

This book should be returned on or before the date
last marked below.

1955

नरमेध



सामाजिक मौलिक भावपूर्ण-उपन्यास

लेखक—

आचार्य चतुरसेन

१५ अगस्त

सन् १९५५

द्वितीय संस्करण

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक—



मुद्रक—

राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहस्तारा, बनारस ।

सुहृद्
कैप्टन सूर्य प्रताप
को
लेखक की
स्नेह भेंट

भारतवर्ष के सब नगर पृथ्वी पर वसे हुये हैं, केवल बम्बई नगर आकाश में बसा है। चार-चार पाँच-पाँच मंजिली अट्टालिकायें इस नगरी में साधारण वस्तु समझी जाती हैं। जो बड़ी-बड़ी इमारतें हैं, उनमें तो प्रायः सर्वत्र लिफ्ट के द्वारा ऊपर नीचे आने-जाने की सुविधायें रहती हैं। प्रायः सब सम्पन्न नागरिक यथासम्भव ऊपर की मंजिलों ही में रहते हैं। भूमि पर नीचे के घरों में जो जीव रहते हैं वे देखने में तो अवश्य ही मनुष्य हैं, परन्तु वास्तव में वे कीड़े-मकोड़े हैं। सील-गन्दगी और अन्धकार से भरी हुई तंग गलियों के दोनों ओर प्रकाश और वायु के आवागमन से रहित, छोटी-छोटी अँधेरी कोठरियाँ साक्षात् काल कोठरी हैं, जिनमें एक-एक कोठरी में ८।१०।२० तक मनुष्य मिलकर रहते हैं, ये लोग पापी पेट के गढ़े को भरने के लिये सुदूर प्रदेशों में अपने असहाय स्त्री बच्चों को छोड़ कर यहाँ कुलीगिरी, दर्बानगिरी या मजदूरी करते हैं। अपने जीवन में वे कभी अपने बाल-बच्चों के साथ जीवन यापन नहीं कर सकते। वे विवाहित होने पर भी विधुर, सपरिवार होने पर भी एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। रुपया बचाने के विचार से वे १०।१५ या अधिक आदमी जो बहुधा भिन्न-भिन्न जाति तथा प्रदेशों के होते हैं—मिलकर एक कोठरी किराये पर ले लेते हैं; जिसे खोली कहते हैं, यही खोली मनुष्य रूपी पक्षियों का घोंसला है, वे दिन भर हाड़ तोड़कर मिहनत करते और रात को इन घोंसलों में आ इकट्ठे होते हैं। कोठरी में बहुधा इतना स्थान नहीं होता कि वे सब उसमें सो सकें—इसलिये बारी-

बारी से वे सोते हैं। कुछ बाहर बैठे रहते हैं, कुछ भीतर सोते रहते हैं। सोनेवालों की बारी जब समाप्त हो जाती है, तब दूसरे भीतर जा सोते हैं, सोनेवाले बाहर आ बैठते हैं। केवक यही बात नहीं है कि इन कोठरियों में वायु और प्रकाश की कमी तथा सील और दुर्गन्ध की अधिकता है, यह तो है ही, इसके अतिरिक्त मक्खी मच्छर-पिस्सू और इन सबसे अधिक खटमल, जो बम्बई की सबसे बड़ी नियामत है, इन कोठरियों में मालिक की हैसियत से रहते हैं। इनके कारण कोई भी वहाँ रहनेवाला नर-जन्तु आराम से सो नहीं पाता है। ये नर-जन्तु इन घोंसलों में इन सब असहनीय जीवन-विधियों के साथ-साथ परिस्थिति-जन्य अनाचारों में भी बहुधा फँसे रहते हैं, फलतः ये नर जन्तु चाहे बूढ़े हों या जवान, बालक हों या अधेड़ सब निस्तेज, सुस्त, रोगी, चिड़चिड़े और पाशविक वृत्तियों के दास बने रहते हैं। इसीलिये हम इन्हें मनुष्य मानने ही से इन्कार करते हैं। बम्बई में मनुष्य तो वे हैं जो मकानों के ऊपर की मंजिलों में, जहाँ सुनहरी धूप, प्रवाहित पवन और खुली छत के साथ ही फर-फर चलता हुआ बिजली का पङ्खा, अनर्थक बकवाद करते रहनेवाला रेडियो, चमचमाता बिजली का प्रकाश, बात की बात में बात करनेवाला टेलीफोन आदि आदि मनुष्य जनोचित साधनों का जुटाव होता है—रहते हैं। लिफ्ट के कारण उन्हें चढ़ने उतरने का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता। इसी से हम कहते हैं कि बम्बई शहर पृथ्वी पर बसा हुआ नहीं है, आकाश में बसा हुआ है।

किन्तु हमारा वर्णन अभी समाप्त नहीं हुआ। हमने बम्बई के मनुष्य नागरिकों का तथा मनुष्य जीवों का ही वर्णन किया है। अब हम आप से इन मनुष्य जीवों के थूकने के ठीकरों का भी वर्णन किया चाहते हैं। जैसे वे पृथ्वी पर रहनेवाले कीड़े—कीड़े होने पर भी मनुष्य रूपधारी हैं, वैसे ही उन कीड़ों के थूकने के ये ठीकरे भी

मनुष्य रूपी हैं। उन ठीकरों की व्यवस्था से पाँति की पाँति सब प्रकार की नागरिक सुविधाओं सहित इस महानगरी में नगर के पिताओं ने लगा दी है। नागरिक वातावरण के शौद्धिक आचार को अछूता रखने के लिए इन्हें सीखचों में बन्द रक्खा गया है। उन सीखचों के भीतर ये धिनौने ठीकरे अपने निष्ठीवन से उन्हें आपूर्ण करने की याञ्चना-सी करते हुए, सजीव आँखों से अपनी याञ्चना को व्यक्त करते हैं। उनके सीखचों के बाहर थूकने के हाजतमन्दों की मेला लगा होता है। रोग और आवश्यकता में लज्जा क्या है? सो यहाँ लाज-शरम की कोई बात ही नहीं है। फिर न ये थूकनेवाले कीड़े ही मनुष्य हैं और न ये ठीकरे ही। यद्यपि दोनों हैं मनुष्य रूप में ही। फिर इसे दर्शन-प्रदर्शन में किसी भी मानुषी या मानवावृत्ति अनुवृत्ति की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

आप हमसे पूछ सकते हैं कि किसलिये ये कुत्सित चित्र उधाड़े जा रहे हैं। गन्दगी से परिपूर्ण नालियों किसलिये कुरेदी जा रही हैं? इसपर हमारा यह कहना है—हमारी कहानी का नायक एक ऐसा ही ठीकरा है, फिर हम कहें तो क्या और न कहें तो क्या? जिसकी कहानी हमें आपको बतानी है उसका परिचय न दं तो आप ही उल-भून में पड़ जायँगे। इसीलिए हमें यह परिचय-पत्र और भी आगे बढ़ाना पड़ा। इस महानगरी में इन तीन महासत्त्वों के अतिरिक्त जिनका हम वर्णन कर चुके, एक और महासत्त्व है। उसे सभ्य-शिष्ट भाषा में बेसिन कह सकते हैं। यह अंग्रेजी का शब्द है पर इसका प्रयोग अंग्रेजों ने ही हमें सिखाया है। इसलिए हम इसका अनुवाद नहीं करेंगे। बेसिन यथार्थ में थूकने के ठीकरे ही का काम देता है। पर वह मनुष्य-कीड़ों के थूकने का नहीं नागरजनों का है। आकाश में रहनेवाले भाग्यशीलों के थूकने का ठीकड़ा है। वह भीतर लोहा अवश्य है पर उसपर ऊपर चमकीला भूकाभूक तामचीनी का पलस्तर है।

लोहा दीखता नहीं है, थूकने-थाकने के बाद वह बड़ी आसानी से साफ चमकदार दीखने लगता है। अलबत्ता यह बेसिन पुराना हाने पर जब फैशनेबुल नागरजनों की निगाह से उतर जाता है, तब ठीकरों की पंक्ति में नरकीटों के थूकने को रख दिया जाता है। ठीकरों में रखे जाने पर भी, नागरजनों के लिए किसी काम का न रहने पर भी, इसे अपनी उच्च भूतमर्यादा का ध्यान तो रहता ही है। मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसी कोई चूल तो है नहीं कि मनुष्य एक बारगी ही अपने भूत को भूल जाय। विशेष कर समृद्ध भूत तो भूलने की वस्तु ही नहीं है। अब, जब कि ये नरकीट, ठीकरे, और बेसिन-सभी शरीर से मनुष्य हैं तो मानवीय परंपरा की भूत समृद्ध जीवन की स्मृति नैसर्गिक सत्ता, इन ठीकरों को बहुधा प्रतिहिंसा और विद्वेष की नरकाग्नि में झुलसा डालती है, और कभी-कभी तो यह आग अनायास ही किसी प्रातिष्ठित नागरिक को छू जाती है, जिससे उसकी सारी ही यशोधवल कीर्ति तब के समान स्याह हो जाती है।

अच्छा अब आप कहानी सुनिये। हम यह तो पहिले ही कह चुके हैं कि हमारी कहानी का नायक एक ठीकरा है। अब उसका शुद्ध लिङ्गानुशासन हम पाणिनी का व्यतिक्रम कर स्त्रीलिङ्ग करते हैं। हम कवि हैं, कल्पना संसार के रचयिता ब्रह्मा हैं। अतः हम अपनी सृष्टि में अपने ठीकरे को स्त्रीलिंग कहकर पुकारते हैं तो आपको आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि अभी तक भी लिङ्गानुशासन स्वेच्छा-चार पर निर्भर है। परन्तु आप बहस मत कीजिये, बात सुनिये।

उसकी आयु चालीस को पार कर गई थी। कभी उसका रंग मोती की भाँति आवदार होगा, आज वह कोयले की राख के समान धूमिल है, दाँत कैसे थे आज नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस समय उसके मुह में आगे के चार दाँत नहीं हैं। गालों पर बड़े-बड़े स्याह दाग और छोटे-छोटे सूराख हो गये हैं, जैसे ताजा सेव असावधानी से रखने

पर सड़ गया हो। आँखें अब भी बड़ी-बड़ी हैं पर वे अब फटी-फटी सी दीख पड़ती हैं। होठ पतले हैं, पर वे अब सूख गये हैं। हँसती है तो अब भी एक बहार की झलक दीख जाती है, तब क्या होता होगा—नहीं कह सकते। कद लम्बा है। बदन छरहरा है। वस्त्र प्रशस्त है, परन्तु उसमें उभार नहीं है—वह मरुस्थली के समान सूखा है। फिर उसके बैठने, बातें करने, हँसने, और खड़े होने में एक शालीनता है। कभी वह दर्शनीय होगी, कोई देख सके तो आज भी वह दर्शनीय है। प्राचीन इतिहासों की पृष्ठभूमि जिन खण्डहरों पर अपना प्रकाश डालती है—उन खण्डहरों की शालीनता क्या दर्शनीय नहीं होती? यह भी एक खण्डहर है, जीवित खण्डहर, और इस खण्डहर की शालीनता ही यह प्रभावित करती है कि उसका कोई अवश्य ही इतिहास होगा। वह मुस्कुराती है व्यंग से, और क्रोध करती है दर्प से। वह किसी को अपने बराबर नहीं समझती, भाग्य दोष से ठीकरा है तो क्या—वह जिस-तिस को अपने आँचल में नहीं थूकने देती। ठीकरे की यह स्पृद्धा है तो अद्भुत। परन्तु जब कुत्तों के भी भाग्य हैं, वे जन्मदोष से कुत्ता होकर भी दुशालों पर सोते और जलेबियाँ खाते हैं, जब कि असंख्य कुत्ते सड़े छिल्लड़ों और जूठन के लिये भगड़ते हैं, तो फिर ठीकरे के भाग्य की स्पृद्धा की आलोचना क्यों?

सीखचों के भीतर वह एकाकिनी है, उसके संगी-साथियों में एक अंगीठी, एक मिट्टी का घड़ा, दो-तीन टीन तथा लोहे और अल्यूमिनियम के बर्तन हैं। उसकी समृद्धि का सूचक एक ताम्रचानी का चाय पीने का प्याला भी है। परन्तु वह अपनी उस सम्पदा को जैसे अपनी अपेक्षा तुच्छ समझती है, इसी से सब चीजें अस्तव्यस्त अव्यवस्थित हैं। केवल उसकी शैया सुव्यवस्थित है, पर उस शैया पर कभी वह सोता नहीं है। सीलभरे फर्श पर एक बहुत पुरानी सीतलपाटी पड़ी है, उसी पर वह सोती है।

सीखचों के बाहर सन्ध्या होते ही दीनहीन नरकीटों की भीड़ लग जाती है, परन्तु वह बहुधा उनको ओर आँख उठाकर देखती ही नहीं। बहुत लोग बोली बोलते हैं, व्यंग कसते हैं, बहुधा वे असह्य हाँते हैं परन्तु वह चुपचाप सब सहन करती है, चिड़िया घर का सिंह जैसे दर्शकों के सब उपद्रवों को सहन करता हुआ निरीह अलस भाव से पड़ा रहता है—वैसे ही वह पड़ी या बैठी रहती है। कई-कई दिन तक वह अपने सीखचों का द्वार खोलती नहीं—परन्तु भूख से जब पेट जलने लगता है तब....।

जाने दीजिये। नुदे की बात सुनिये। इधर तीन चार दिन से वह बहुत अस्तव्यस्त है, जैसे उसका सम्पूर्ण ज्ञान सुप्त हो गया है। वह जैसे कुछ देख-सुन नहीं रही है। वह कुछ निर्णय किया चाहती है पर कर नहीं सकती। जीवन भर जैसे अपने से युद्ध करते-करते वह आज हार रही है। वह एक कदम उठाने को विवश हो रही है। पर कदम उठाए या सो जाय यह निर्णय नहीं कर पा रही है। उसमें साहस है, बल भी है, शरीर में भी, मस्तिष्क में भी और आत्मा में भी। इतना है जितना ठीकरों में तो क्या नागरों में भी नहीं होता। साहस और बल की कमी से नहीं—विवेक के आधिक्य से वह कदम उठाने में आगा-पीछा कर रही है। आप कहेंगे ठीकरा और विवेक ? परन्तु इस विषय पर कृपया वहस मत कीजिये। उसने विवेक को भी सहमत कर लिया है, और साहस-शक्ति-विवेक सबको लेकर वह उठी। लापरवाही से साड़ी का आँचल कन्धे पर सरकाया—पुराना चप्पल पैर में डाला, पीखचों का द्वार खोला और चल दी। पीछे घूम कर उसने अपनी प्रभुदा को देखा भी नहीं। किसी ने उससे कुछ पूछा भी नहीं।

बम्बई की जनरल से भरी राहवाट, मोटर ट्राम, आते-जाते नर-नारी का जीवित समुद्र, महलों के झरोखे से आती हुई बिजली की प्रकाश रैखायें, आगे पीछे मोटरों में सपाटे बन्द दौड़ती हुई विलास

रोषणाँ, बाजारों की दुकानों में उसाउस भरी हुई जीवन शोभाएँ, इन सबको अपनी चप्पलों और आँखों से टुकराती हुई वह तेज चाल से कदम-कदम चली जा रही थी। जैसे वह किसी को नहीं देख रही थी, वैसे ही उसे भी दुनिया नहीं देख रही थी। नर-समुद्र में इसी तरह आँखें अंधी हो जाती हैं।

नौ वज्र गये थे। पर बम्बई का तेज तो अभी भी मद्धिम नहीं पड़ा था। विजली की असंख्य दीपावलियाँ और नर-समुद्र की आन्दोलित लहरें रात के सचाटे को प्रकट नहीं होने दे रही थीं। वह चलती चली गई। प्रत्येक कदम पर उसके चरणों की गति और दृढ़ता बढ़ती जाती थी। उसके मस्तिष्क में जो विचार तेजी से आ रहे थे, उनसे, उसके रक्त का नसों में संचालन असंयत हो रहा था, इसलिये वह तीर की भाँति उड़ी जा रही थी। एक के बाद दूसरा मार्ग-बाजार गली-मकान पार करती हुई वह एक विशाल अट्टालिका के सामने जा खड़ी हुई। एक क्षण रुक कर वह उसमें घुस गई। वह सीढ़ियों को पार करती हुई और प्रत्येक मंजिल पर क्षण भर रुक कर इधर-उधर देखती हुई ऊपर की चौथी मंजिल के एक कमरे के द्वार पर पहुँची। किसी ने उसे देखा नहीं। उसने धीरे से द्वार खटखटाया। भीतर से धीमी आवाज आई—

‘चले आओ।’ वह भीतर घुस गई।

एक पचास वर्ष का अधेड़ पुरुष बैठा शराब पी रहा था। मेजपर तश्तरी में बर्फ के टुकड़े, सोडें की बोतल और शैम्पियन रखी थी। अधेड़ पुरुष लम्बे डीलडौल का एक शोभनीय गौरवर्ण पुरुष था। उसकी उँगली में एक बड़े हीरे की अंगूठी चमक रही थी, उसकी बत्तीसी नकली और कीमती थी। सिर के बाल चाँदी से सफेद थे। शरीर पर बढ़िया रेशम का कुर्ता था। पैर में क्रॉम लेदर का पम्प और कमर में जरी कोर की बढ़िया धोती थी। कमरा छोटा अवश्य था, पर

वह उच्च कोटि की सज्जा से सजा था, लेकिन सोफा सेट, फर्नीचर सब प्रथम श्रेणी के थे ! एक कोने में सेफ था ! उसका यह आगमन अप्रत्याशित था । उसे देखते ही वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ । उसने अकचकाकर कहा—‘तुम ?’

“इतना आश्चर्य क्यों करते हो ? मैं—मैं तो हमेशा इसी समय यहाँ आया करती थी ।”

“परन्तु, अब वे तो बीती बातें हैं, खैर कहो कुछ रुपया चाहिये क्या ?” वह उठा और सेफ की ओर बढ़ा ।”

“रहने दान, कष्ट न करो. तुम तो जानते ही हो कि मैंने तुमसे रुपया कभी दान में लिया नहीं, आज भी मेरी वही आदत कायम है ।”

“दान की क्या बात है ! तुम संकोच न करो, कितना दूँ ?”

“समझ गई, तुम जल्दी मुलाकात खत्म किया चाहते हो. तब ऐसा ही सही, पर रुपया मुझे नहीं चाहिये ।”

“तब कहो क्या चाहती हो ।”

“ओह, यह तो बिल्कुल ही दूसरा टोन है, यही वाक्य तुम पहले और ढंग पर कहते थे ।” वह हँसी, और आगे बढ़ कर एक डेस्क पर कूद कर बैठ गई ।

उस नर-पुङ्गव का धैर्य असीम था । ठीकरे के इस दुःस्साहस और असह्य साहचर्य से भी वह धैर्यच्युत नहीं हुआ । उसने कहा—“तो कहो न इस समय किसलिये आई हो ।”

“कहने को तो कोई बात नहीं है ।”

शैम्पियन ने उस पुरुष के मस्तिष्क में एक ऊष्णता की रेखा उत्पन्न की । उसने धोड़े स्वर में कहा—“किन्तु मैं जल्दी में हूँ ।”

“क्या तुम कहीं जा रहे हो ? ऐसा तो मालूम नहीं पड़ता ।” इसके बाद उसने चारों ओर निगाह दौड़ा कर कमरे को देखा, फिर कहा—यह बड़े आश्चर्य की बात है, कि तुम इतने अपरिवर्तनशील

हों। तुम्हारे कमरे की प्रत्येक वस्तु जहाँ जैसी थी, वहीं वैसी ही हैं, केवल तुम्हारी वाणी में अन्तर है।”

“किन्तु बात यह है कि कुछ आदमी अभी यहाँ आने वाले हैं, तुम्हारा यहाँ इस समय रहना ठीक नहीं है, न हो फिर आ जाना।”

“फिर नहीं दोस्त, अभी।”

“तब कहती क्यों नहीं, क्या बात है।”

स्त्री ने बात ही बात में डेक्स की दराज खोल कर उसमें से रिवाल्वर निकाल लिया। उसे हाथों में उछाल कर उसने हँसते हुए कहा—“अब से दस वर्ष पूर्व भी तुम इसे इसी दराज में रखते थे। तुम अच्छी तरह जानते हो इस खिलौने से खेलना मुझे कितना पसन्द है।”

“परन्तु तुम यह क्या बेवकूफी कर रही हो, वह लोडेड है।”

“तब तो और भी अच्छा है, तो क्या तुम यह मुलाकात जल्द ही खत्म करना चाहते हो?”

स्त्री की वाणी की दृढ़ता, उसकी बातचीत का ढंग और उसके हाथ में भरा हुआ रिवाल्वर देखकर विलासी पुरुष एक बारगी ही असंयत हो गया। उसने कहा—“पागलपन की भी हद है, रिवाल्वर मुझे दो और तुम अभी कमरे से बाहर निकल जाओ!”

परन्तु ठीकरे ने उसकी बात सुनी ही नहीं। उसने कहा—

“किन्तु यह रिवाल्वर कभी भी तुम्हारे कुछ काम नहीं आया—आज काम आवे तो कैसा? तुम मरने से डरते तो नहीं?”

“यह तुम क्या कह रही हो? रिवाल्वर मुझे दो!” वह हाथ फैलाकर आगे बढ़ा।

उसे हाथ के इशारे से रोक कर उसने कहा—

“वहीं खड़े रहो दोस्त, जिससे सब गलत-फहमी सरलता से दूर हो जायँ। कहो, तुम तीन चार दिन प्रथम कहीं गये थे?”

“इससे तुम्हें क्या?”

“तुमने जो बातें कहीं थीं वह मुझे मालूम हो चुकी हैं ?”

“तो ?”

“मेरा ख्याल था कि जो कुछ हो चुका है वह यथेष्ट था और तुम एक सम्य पुरुष की मर्यादा रखोगे ।”

“क्या तुम मुझे नसीहत देने आई हो ?”

“उससे क्या लाभ है, उसका न यह समय है न अवसर ”

“तुम बाहर जाती हो या मैं पुलिस बुलाऊँ !”

“इसके लिये तुम्हें कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, वह तो आप ही आकर अपना कार्य करेगी ।”

“इसका मतलब ?”

“तुम तो बड़े विद्वान हो, इस महा-नगरी में कानून का परिणित तुम्हारे समान कौन है ? इतनी सी बात का मतलब भी नहीं समझ सकते ? मैं तुम्हें गोली मारूँगी तो क्या पुलिस मुझे छोड़ देगी ?”

“यह तुम मजाक कर रही हो—कृपाकर रिवाल्वर वहीं रख दो ।”

“मुझे तुम्हें मारने का दुःख है, तुम्हें मैंने सच्चे हृदय से प्यार किया था—आज भी वैसा ही प्यार करती हूँ—पर जिस पुरुष का कोई अपराध नहीं है, जो देवोपम है, उसकी मर्यादा की रक्षा करना भी मेरा कर्तव्य है । तुम जानते हो कि कर्तव्य प्यार से बहुत बड़ा है, तुमने भी मुझे सचमुच प्यार किया था पर वे दिन तो अब नहीं रहे । मैं अपने योग्य स्थान पर पहुँचकर अपने जीवन का भोग भोगती रही । अब न जाने कैसे यह कलुष तुम्हारे मन में समाया । कदाचित् तुम्हें धन की आवश्यकता हुई हो ! परन्तु मैंने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया है, मैं तुम्हें मारूँगी । तुम, यदि कुछ भी मर्दानगी रखते हो तो पिछले प्यार के नाम पर मैं तुमसे यह अनुरोध करती हूँ कि तुम वीर की भाँति निर्भय मेरी गोली खाओ और मरने से प्रथम मुझे

क्षमा करते जाओ, ताकि जब मैं फाँसी पर चढ़ूँ तो तुम्हारे प्यार से ओत-प्रोत मेरे प्राण-पखेरू प्रयाण करें ।

परन्तु वह सभ्य पुरुष उतना वीर न था । उसने हकला कर डरते डरते कहा—“ऐसी बेवकूफी की बातें न करो, तुम चाहे भी जैसी हो मैं तुम्हें अब भी...”

स्त्री ने सिंहनी की भाँति ललकार कर कहा—“अरे अधम ! अब भी यह बात ? मैं नहीं जानती थी तू कायर है । अब से दस वर्ष पूर्व जब मैंने तेरे विश्वासघात का लाभ उठा कर तेरे पाप-पाश से छुटकारा पाया, तब से अब तक मैं निष्पाप अपना दण्ड भोगती रही । मैंने वह तप किया कि इन्द्र का इन्द्रासन भी डिग गया । एक क्षण को भी मैंने वासना को, लिप्सा को, विलास को अपने तन मन में नहीं फटकने दिया । आत्मदण्ड देने के लिये मैं स्वेच्छा से ठीकरों की पंक्ति में जा बैठी । विलास और भोग के सब तत्वों को मैंने अपने जीवन में घृणा-पूरित कर दिया । जिससे वह मेरे लिये कुत्सित अभक्ष्य भक्षण हो गया । यह सब मैंने पूज्य पूजन की भावना से किया । आज तू मृत्यु से डर कर ऐसी अनहोनी कायर बात कहता है ? आज अब तू मर ।”

उसने रिवाल्वर का घोड़ा दबाया । और उसकी नाल, उस हीरे की अँगूठी वाले सिल्क के कुर्ते पहने हुए पुरुष की ओर तान दी ।

पुरुष में पौरुष और साहस का अभाव था । उसने भागने के लिये द्वार की ओर कदम उठाया । स्त्री ने कहा—“भागना मत, फिर कहती हूँ—वीर की भाँति छाती खोल दो । अधम ठीकरे की दृष्टि में मत गिरो । जिसने तुम्हें प्यार किया अब मरती बार उसकी घृणा के पात्र मत बनो ।

परन्तु पुरुष ने मस्तिष्क का संतुलन खो दिया था । वह हठात् स्त्री पर टूट पड़ा । स्त्री के शरीर में यथेष्ट बल था, उसने तनिक पीछे हट

कर अकंपित उँगलियों से रिवाल्वर का घोड़ा दबाया । धड़ाका हुआ । और गोली उस पुरुष की जाँघ में घुस गई । लाल लोह से उज्ज्वल जरी-काँर की धोती देखते-देखते रंग गई । पुरुष ने भागने की चेष्टा करते हुए पुलिस को आवाज लगाई, पर इसी समय दूसरी गोली उसकी पसलियों में घुस गई और वह आँधे मुँह सीढ़ियों पर गिर पड़ा, इसी समय तीसरी गोली ने उसकी खोपड़ी चकनाचूर कर दी । वह सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ नीचे चला गया । इसी समय दो पुरुषों की सीढ़ी चढ़ने की, फिर तुरन्त ही खून-खून की चिल्लाहट उसने सुनी ।

स्त्री ने भली-भाँति देख लिया था कि वह मर चुका है । वह शान्ति और इत्मीनान से कमरे में लौट आई । भीतर से उसने दरवाजा बन्द कर लिया । उसे किसी ने नहीं देखा । परन्तु क्षण भर ही में मकान मनुष्यों और उनके शोरगुल से भर गया ।

स्त्री ने अब भली-भाँति कमरे का निरीक्षण किया । भागने का तो कोई प्रश्न ही न था । उसने दरवाजे से अड़ाकर कमरे का सब फर्नीचर रख दिया । फिर उसने जिस दराज से रिवाल्वर निकाली थी उसे खोला । उसमें काफी कारतूस भरी थी । वे सब उसने मेजपर फैला दी । एक बार उसने फिर उस सुसज्जित कमरे में अपनी दृष्टि घुमाई । शृंगार-मेज पर सुगन्धित सिगरेटों का एक बक्स रक्खा था । उसे देखकर वह प्रसन्न हो गई । उसे उठा कर उसने कारतूसों के पास मेज पर रख लिया । ढूँढ़ कर उसने दियासलाई भी पा ली । अब उसने रिवाल्वर की जाँच की । अभी उसमें नौ गोलियाँ भरी थीं । उसी समय द्वार पर थाप पड़ी । उसने उधर ध्यान नहीं दिया । कमरे की बत्ती बुझाई और इत्मीनान से एक सोफे पर बैठकर उसने सिगरेट सुलगा ली ।



किसी ने कर्कश स्वर में कहा—“दर्वाजा खोल दो”

इसके साथ ही साथ बड़े जोर से दर्वाजा भड़भड़ाया गया । स्त्री ने उठकर एक संधि से देखा—बाहर वरंडे और सीढ़ियों में आदमी ही आदमी भरे थे । उसने रिवालवर उठाया । और सिगरेट फेककर एक शीशे की संधि से दो फायर किए । खूनी भीतर है, उसके पास शख है—वह कोई दुर्दान्त डाकू है, इस प्रकार की विभीषिका चारों ओर फैल गई । भीड़ दूर हो गई । पुलिस ने आत्म रक्षा के लिये सहायता मँगाई । सारी बिल्डिंग घेर ली गई । चौराहों और राह के नाकों पर मशीन-गनें लग गईं । बहुत-सी संकेत वार्ता होने पर भी खूनी ने आत्मसमर्पण नहीं किया । वह रह-रह कर पुलिस की गोलियों का प्रत्युत्तर देता रहा । खिड़कियों और दर्वाजों के शीशों को चूर करती हुई गोलियों की बौछार, कमरे की दीवारों—तथा वहाँ की सुसज्जित वस्तुओं को नष्ट-भ्रष्ट करने लगी ।

खूनी ने अपने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया । वह इतमीनान से चारों ओर कुर्सियों का दुर्ग बनाकर सुरक्षित-तम कोने में एक कोच पर पैर फैला कर बैठ गई । एक के बाद दूसरी सिगरेट उसने फूकना प्रारम्भ किया । सुन्दर शृङ्गारदान का शीशा गोली लगने से भन-भनाकर चूर चूर हो गया । उस कमरे की विलास-सज्जा को इस प्रकार नष्ट होते देख उसका हृदय आनन्द से उल्लसित हो उठा । उसे ऐसा प्रतीत हुआ—जैसे उसके जीवन की सारी सज्जाएँ वासना

की गोलियों का आघात खा कर नष्ट हुई, उसी प्रकार इस कमरे की सजा भी नष्ट हो रही है। कुछ घण्टे पूर्व वह कितना मनोरम, कितना आकर्षक, कितना सम्पन्न था, वह भी तो स्वयं कभी वैसी ही मनोरम—आकर्षक-सुसज्जिता और सम्पन्न थी। ऐसी ही चांटें पड़कर, झनझनकर उसके जीवन के सारे ही सौन्दर्य चूर हो गये थे। संसार का यह छोटा-सा विनाश उसे बड़ा ही मनोरम और प्रिय लग रहा था। पुलिस को उत्तेजित करने के लिये वह यदा कदा एकाध गोली छोड़ देती। आह, उत्तेजित करने के लिये घातक गोलियाँ कितनी उपयोगिनी हैं, यह जीवन में उसी ने अधिक से अधिक जाना था। बीच-बीच में एकाध फायर करके चारों ओर वरसती मशीनगनों की गोलियों की बौछारों के बीच निश्चिन्त बैठी हुई, वह इस प्रकार एक के बाद एक सिगरेट पीती जा रही थी, जैसे वह कोई अत्यन्त आकर्षक सिनेमा देख रही हो। आतङ्क उसके हृदय को छू नहीं गया था। संसार को उसने सीखचों के बाहर कदम रखते ही विसर्जन कर दिया था। वह जीवित थी—पर जीवन से तथा उसके माध्यम शरीर से उसका कोई सम्पर्क ही न रह गया था। वह एक स्थिर अविनश्वर सत्त्व की भाँति उस विनाश की वर्षा का आनन्द ले रही थी। बाहर व्यवस्था, शक्ति और समाज का गर्जन-तर्जन चल रहा था, सैकड़ों स्त्री-पुरुष चारों ओर आ जुटे थे। महानगरी में हलचल मच गई थी, पुलिस के सब से बड़े आफिसर भी मौके पर आ जुटे थे, परन्तु किसी का साहस भीतर घुसकर उस दुर्दान्त खूनी को पकड़ने का न होता था।

अब उसकी सिगरेट और गोलियाँ दोनों ही समाप्त होने पर आ गई थीं। उसने मुस्कराकर मेज पर पड़े कुछ कारतूसों को देखा। अन्तिम कारतूस को उसने बहुमूल्य निधि की भाँति दोनों हाथों में उठाया। और जब उसने अन्तिम गोली छोड़ी तो रात बीत रही

थी, पौ फट रही थी। पुलिस सेना बुलाने की सोच रही थी। उसने झाँककर देखा, और हँसी। उसने होठों ही में मुनमुनाकर कहा—“शक्ति और सत्ता भी कितनी हास्यास्पद है ?”

कुछ क्षणों के लिये उसकी आँख भी भ्रमक गई। फिर एकदम मशीनगन की गड़गड़ाहट से वह चौंककर उठ बैठी। अब उसका रिवाल्वर खाली था—उससे वह काम भी ले चुकी थी और खेल भी चुकी थी। प्रभात की सफेदी पहिले आसमान पर, फिर पृथ्वी पर फैल गई। प्रभात की मनोरम वायु बहने लगी। उसने सोचा बहुत हुआ, अब खेल खत्म होना चाहिए। उसने आँख उठा कर चारों ओर देखा। एक मूल्यवान छड़ी वहाँ रखी थी उसने इधर-उधर देखा—मेज पर का लफेद वस्त्र उठा, छड़ी में बाँध कर खिड़की के बाहर निकाल दिया। साथ ही रिवाल्वर भी खिड़की की राह फेंक दिया। फिर उसने सिगरेट के डब्बे में हाथ डाला, केवल एक सिगरेट बाकी थी उसने उसे होठों से लगाया। परन्तु दियासलाई समाप्त हो गई थी। सिगरेट उसने मेज पर रख दी और द्वार में अवरोध के लिये जो मेज कुर्सी लगी थी हटा दी। वह फिर इतमीनान से सोफे पर आकर बैठ गई।

गोलियों की बौछार बन्द हो गई। छः सशस्त्र आफिसर पिस्तौल ताने आगे बढ़े। उनके आगे पीछे दो दर्जन सिपाही संगीनें चढ़ाए फूँक-फूँक कर कदम रखते चल रहे थे। द्वार पर पहुँच कर एक अफसर ने कड़क कर कहा—“दरवाजा खोल दो, और हथियार रख दो।”

हत्याकारिणी ने आलस्य भरे स्वर में कहा—“भीतर चले आओ भाइयों !”

बड़ी सावधानी से एक, फिर अनेक अफसर भीतर घुसे। उनकी संगीनों की नोकें और पिस्तौलों की नालें तनी थी—अफसर ने कड़क कर कहा—“हाथ ऊँचा करो।”

हत्याकारिणी खिलखिला कर हँस दी। उसने कहा—“आप सबको अभय ! हाँ आपके पास दियासलाई हो तो जरा दे दीजिए ।”

पुलिस अधिकारी स्तब्ध हो गये। प्रथम तो यह कि वह दुर्दान्त खूनी व्यक्ति, जिसने पूरे ८ घण्टे नगर की पूरी पुलिस से मोर्चा लिया—एक औरत थी। दूसरे—वह ऐसी निर्भय और निस्पृह कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

एक सिपाही ने अफसर का संकेत पाकर दियासलाई की डिब्बी उसकी ओर फेंक दी। सिगरेट जलाते हुए उसने कहा—“हथकड़ी तो आप अवश्य ही लगाएँगे ?”

“जाप्ते की कार्यवाही करने के लिए हम मजबूर हैं श्रीमती जी, पर हम आपके साथ कोई कड़ाई का व्यवहार नहीं करना चाहते; यदि आप हमारे कर्तव्य-पालन में कोई बाधा न दें।”

हत्याकारिणी ने हँसकर व्यंगपूर्ण स्वर में कहा—“श्रीमती जी’ वाह—खूब कहा। अरे भाई, मैं ठीकरा हूँ। किन्तु अब मैं अधिक आप लोगों को तंग नहीं करूँगी। रात भर आप काफी परेशान रहे। अच्छा, अब चला जाय।” उसने दोनों हाथ फैला दिए। पुलिस ने हथकड़ी लगा दी और उसे घेर कर ले चले। हथकड़ी लगे हाथों से सिगरेट का कश खींचती हुई जब वह बाहर आई, तो हजारों व्यक्तियों की आश्चर्य और कौतूहल की दृष्टि उसपर पड़ी। अनेक पत्रों के संवाददाताओं ने उसके सामने केमरे किये। वह जैसे सारे विश्व को, उसकी शक्ति, सम्पदा और जीवन भोग को अपने पैरों से रौंदती हुई, अपनी ईश्वरप्रदत्त शालीनता से सिगरेट का धुँआ उड़ाती पुलिस लारी में बैठ गई।

युग-युगान्त से विश्व के मेधावी जनों की यह निष्क्रान्त धारणा बनी चली आती रही है कि सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रों की छाया में आलोकित यह अविनश्वर सचराचर जगत एक सर्वनियन्ता परमेश्वर

की छाया-माया में ओतप्रोत है। इस निष्कान्त धारणा में सबकी सब कल्पना ही है, फिर भी इस विश्वास की जड़ें पाताल तक गहरी हैं और इस पर तनिक भी सन्देह करनेवाला जन, नास्तिक कह कर तिरस्कृत किया जाता है। फिर भी विचारनेवाले विचारते हैं—और कभी-कभी विचारों की यह धारा सकारण ऐसे विद्रोह का रूप धारण कर लेती है कि मनुष्य आहत योद्धा की माँति चीत्कार कर उठता है और कहता है 'नहीं-नहीं, यह सब झूठ है, मिथ्या है, भ्रम है, सचराचर जगत का वह नियन्ता परमात्मा एक धोखा है, मानव के कायर मस्तिष्क का एक विकृत विचार है।' मनुष्य का बुद्धिबल वृद्ध हो गया है। सो इसी से इस काल्पनिक परमात्मा की लाठी का सहारा लिये बिना वह चल नहीं सकता है। परन्तु इमें इस विवाद से क्या ? हम तो यही कहते हैं कि उसी सर्वसत्ताधिपति सर्वनियन्ता परमेश्वर की सूर्य-चन्द्र नक्षत्रों की छाया-माया में, जगमग इस जगत में परस्पर विरोधी बातें उसी की आँखों के आगे नित्य होती ही रहती हैं।

इसीसे हमारी सम्मति है कि आपको नरकीटों के थूकने के ठीकरों के कुत्सित और वीभत्स सीखचों के दर्शन के बाद, आकाश-कक्ष में सुख से मद्य पीते हुए उस हीरे की अंगूठी और जरी कोर की धोती वाले के सुख विलास की सज्जा से जगमग नर-नागर के मुख पर स्पर्द्धा तथ्य, वहाँ ठीकरे का असाध्य अधिकार से पहुँच कर उससे ऐसे दर्प से, शान्त शिष्ट-भाषण करने के बाद उसे गाली मार देना और फिर ऐसी शालीनता से पुलिस सत्ता से अचल युद्ध करने के बाद, इतमीनान से सिगरेट पीते हुए आत्मार्पण कर देने पर आश्चर्य न करना चाहिये। क्या हानि है यदि यह समझ लिया जाय कि यह सब उसी सर्वजगतपति परमेश्वर ही की छाया-माया है।

जो हो जैसा हो। आ गए अब आप बालकेश्वर रोड पर। आप जानते ही हैं यह बम्बई के धनकुवैरों का मुहल्ला है, जिसके एक चरण

को हिन्द महासागर तथा दूसरे चरण को अरब महासागर अपनी उत्तुङ्ग तरङ्गों से परस्पर स्पर्धा करता हुआ सा चुम्बन करता रहता है। यहीं विश्व का आश्चर्य भूत 'लटकता हुआ बाग' (Hanging garden) है। यहाँ के शान्त गम्भीर वातावरण में नगर का शोर-गुल नहीं है। यहाँ केवल सुख दुःख के भार से लदेफदे बड़े-बड़े मानव हृदय, जो मोटरों में लदकर लिप्साओं, अलिप्साओं, वासनाओं और शोषणाओं को अपने अभागे जीवित छोटे से हृदय के रक्त-बुद्बुदों में टूँस-टूँस कर भर लाते हैं, उनकी ठण्डी गर्म श्वासों की आह और आहमिश्रित फूस्कार वातावरण में जीवन के चिन्ह बिखेरती घूमा करती है। समुद्र में प्रतिबिम्बित असंख्य विद्युत दीपावलियों से सुसज्जित चमचमाती सड़कों पर, महामूल्यवान मोटरें अवश्य महानागिन की भाँति मनुष्य हृदय की उस फुस्कार को अपनी दुर्धष फुस्कारों से दूर कर अपना रास्ता साफ करती सर् से निकल जाती है।

सो गत परिच्छेद में वर्णित ठीकरा जिस समय सीखचों के बाहर अपने कदम बढ़ा रहा था उसी समय—लगभग नौ बजे एक विशाल आलीशान महल, शतसहस्र विद्युत दीपावलियों से विशिष्ट रूप से जगमग कर रहा था। मोटरों पर मोटरें क्षण-क्षण पर आ रही थीं और उसमें से भद्र महिलायें और भद्रजन उतर-उतर कर अपने हीरे मोती, रत्न और गर्व से लकदक आगे बढ़ रहे थे। दर्जनों—बेरा खानसामा—सिपाही दौड़ धूप कर आगन्तुकों और उनकी मोटरों की व्यवस्था में लगे थे। कोठी के बाहर लान पर पंक्तिबद्ध बहुत सी छोटी-छोटी मेजों पर स्वदेशी-विदेशी जलपान और भोजन का विराट् आयोजन था। गृहपति और उनके पुत्र दोनों ही मुख द्वार पर खड़े नम्रतापूर्वक मुस्कुराकर तथा हाथ जोड़ कर आगत अतिथियों का स्वागत-सत्कार तथा उनकी हार्दिक शुभ-कामनाओं का भार ग्रहण कर रहे थे।

गृहपति नगर के प्रमुख नागरिक और नगर के लार्ड मेयर सर ठाकुरदास और उनके पुत्र श्रीत्रिभुवनदास बार-एटला थे। त्रिभुवनदास सर ठाकुरदास के इकलौते पुत्र थे और आज उनका २८ वाँ जन्म दिन था—इसी जन्म दिन के शुभ उपलक्ष्य में यह ग्राण्ड तवाजा दी जा रही थी, जिसमें बम्बई के आकाशवासी प्राण ही आ जुटे थे।

सर ठाकुरदास काले रङ्ग की शेरवानी और चूड़ीदार चुस्त पायजामा पहिने तथा बढ़िया पम्प पैर में डाले खड़े थे। उनके पुत्र त्रिभुवनदास आपाद अँग्रेजी कीमती सूट डाटे थे। पिता पुत्र दोनों ही क्लीन-शेव थे। परन्तु पुत्र की आँखों में उल्लास-जीवन-तेज-प्रतिभा और आनन्द उछल रहा था—वह अभी २२ ही वर्ष का युवक प्रतीत हो रहा था, जब की उसके पिता सर ठाकुरदास जी मुश्किल से अभी पचास वर्ष को पार कर रहे होंगे—एक चकित निराश और परास्त से पुरुष थे। उनके हृदय की आहत वेदना उनके नेत्रों से प्रकट थी, जिनके चारों ओर स्याह लकीरें पड़ी हुई थीं। वे अपनी आयु से बहुत अधिक बृद्ध प्रतीत हो रहे थे। उनके सारे बाल चाँदी के समान सफेद थे।

एक के बाद दूसरे अतिथि जोड़ियों में तथा एकाकी सम्मुख आते जाते थे और पिता पुत्र दोनों अपने परिचय की मर्यादा के अनुसार ही उनका हँस-हँस कर स्वागत करके उपयुक्त आसन पर उन्हें सादर बिठाते जा रहे थे। उनके संकेत से सेवक लोंग आनन-फानन में आगत जनों की सब सुख-सुविधायें ला जुटाते थे।

एक अधेड़ दम्पति ने आगे बढ़ कर उल्लास भरे उच्च स्वर से कहा—“सर ठाकुरदास, मैं और मेरी पत्नी आप का और अजीज त्रिभुवन को अपनी हार्दिक शुभ कामनायें अर्पण करते हैं।” सर ठाकुरदास ने मुस्कुरा कर उनका हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—“सर शादी राम ! मैं आपका और श्रीमती जी का बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ। आइये इधर आइये।”

इस अंधेड़ दम्पति के साथ एक चम्पक वर्णी वाला भी थी। उसका नवीन केले के पत्ते के समान उज्ज्वल सौन्दर्य और उगते हुए सूर्य के समान विकसित यौवन, उसके शरीर पर धारण किए हुए रत्नों से होड़ ले रहा था। उमी आंर लक्ष्य करके सर ठाकुरदास ने कहा—“बेटी किरण, तूने आज इतनी देर कर दी। देखती तो हैं, घर में कोई स्त्री नहीं हैं। सूने घर में महिला अतिथियों का सत्कार कौन करेगा बेटी ! जा देख और सबकी देख भाल कर।”

चन्द्र किरण ने मुस्कराकर कहा—“पापा, आप चिन्ता मत कीजिए—मैं अभी उधर सब ठीक-ठाक किए देती हूँ।”

“तो बेटा त्रिभुवन, जाओ तुम भी किरण के साथ, जिस वस्तु की आवश्यकता हो, जुटा दो। देखो किसी को कुछ शिकायत न हो।”

किशोरी और त्रिभुवन दोनों ही उधर चल दिये, जहाँ बहुत-सी बालायें हास्य और सुषमा का सौख्य बखेर रही थीं। सबने दौड़ कर किरण को घेर लिया। त्रिभुवन किरण के पीछे-पीछे थे, वे ठिठक रहे। एक मुखरा ने कहा—“आप का यहाँ क्या काम है सर ?”

त्रिभुवन ने कहा—“मैं सर नहीं हूँ श्रीमती जी ! आप का दास त्रिभुवन हूँ। सर पूज्य पिता जी हैं।”

“हो सकता है—पर आप यहाँ स्त्रियों में क्या करने आए हैं ?”

“यह तो आप उनसे पूछिए जो मुझे बाँध लाई हैं।”

“अच्छा, तो आप किरण से बँधे हुए आये हैं।”

किरण ने तिनक कर कहा—“सरासर ज्यादाती है। मैंने किसी को नहीं बाँधा है। आपने खामरवाह इन्हें पीछे लगा दिया है।”

मुखरा ने कहा—“खामरवाह ?” और फिर सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं। एक ने कहा—“अच्छा, जब आप आ ही गये हैं तो आपको बधाई ही क्यों न दे डाली जाय ?”

“पर पहिले किरण बधाई दे ?”

“मैं क्यों दूँ ?”

“बाँध जो लाई है ?”

“मैंने किसी को नहीं बाँधा है !”

“तो कसम खा !”

“कसम क्यों खाऊँ ?”

इस पर सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं। त्रिभुवन ने कहा—
“आप आज्ञा दें तो मैं अपने आपको बधाई अर्पण करने का गौरव प्राप्त करूँ ?”

“किस उपलक्ष्य में ?”

“आप सबके आनन्ददान के उपलक्ष्य में।”

“इससे तो अच्छा यह हो कि आप पापा के पास तशरीफ ले जाँय—और हम लोगों को आजादी दें” किरण ने नखड़े से कहा।

“समझ में नहीं आता क्या करूँ—पिताजी की आज्ञा मानूँ कि आपका हुक्म ? रामायण में लिखा है...”

एक मुखरा ने कहा—“हाँ, हाँ रामायण में जो लिखा है वह हम जानती हैं। अच्छी बात है आप पिताजी की आज्ञा मानिए। कहिए, पिताजी की क्या आज्ञा है ?”

“यह कि मैं आप लोगों की प्रत्येक आज्ञा का पालन करूँ ?”

“अच्छी बात है। आओ किरण वहन उस ओर चलें, निराला है।”

सब लोग कोठी के पास में एक निराले स्थान पर पहुँच गईं। अब मुखरा ने कहा—“अच्छा अब आप हमें नाच दिखाइये ?”

“नाच ?”

“जी हाँ नाच !”

“नाचना तो मैं नहीं जानता।”

“कैसे नहीं जानते ? बिना नाच नाचे आप विलायत से वैरिस्टरी कैसे पास कर आये ।”

“वैरिस्टरी पास करने में क्या नाचना पड़ता है ?”

“तो आप जजों को उल्लू बनाकर कैसे अपराधियों को फाँसी के तख्ते से उतारते हैं ? कैसे उनकी कलम से अपने मतलब की बात लिखा लेते हैं ?”

“तुम्हारा खयाल है नाचकर ?”

‘वेशक । आप नाचिए, नहीं तो हम सब नाराज हो जावेंगी’
इस पर सबने कहा—

“जी हाँ, या तो नाचिए, या जहाँ से आये हैं वहीं चले जाइये ।”

‘तो किरण मुझे जहाँ से लाई है, वहीं ले जाकर छोड़ आए और पापा कैफियत पूँछे तो कैफियत भी दे आवे !”

“मैं क्यों कैफियत देने लगी, आप नाचते हैं तो नाचिए ।”

“अच्छी बात है । पर मेरे साथ नाचेंगा कौन ?”

“साथ की क्या आवश्यकता है !”

“वाह, बिना साथ के कहीं नाच होता है ?”

“तब कायदे के मुताबिक काम कीजिये । साथी को चुन लीजिए”
सबने शरारत भरी नजर से किरण की ओर देखा ।

किरण का मुँह लाज से लाल हो गया ।

त्रिभुवन ने किरण के आगे आकर सिर झुकाया । किरण ने तनिक कर कहा—हटो मैं जाती हूँ, और वह एक रंगीन तितली की तरह उड़ गई । मुखरा ने कहा—जाइए-जाइए अपना शिकार पकड़ लाइए । परन्तु त्रिभुवन इससे प्रथम ही लम्बे-लम्बे डग मारते हुए उधर ही चल दिए जिधर किरण जा रही थी ।

सब बालाएँ खिलखिला कर हँस पड़ीं । एक कुज था, आँट में

जाकर किरण को त्रिभुवन ने पकड़ लिया । उसने कहा—किरण, इस सुयोग के लिये मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ । आओ तनिक यहाँ बैठो ।

“जाकर वहाँ नाचते क्यों नहीं ?”

त्रिभुवन ने हँसकर कहा—“नाच तो हो गया । वे सब खुश हो गईं । अब हम और तुम ।”

“हम और तुम क्या ?”

“हम और तुम—दो बटा एक ।”

“दो बटा एक ?”

“एक में मिला एक, तो एक ही एक ।”

“यह नया गणित क्या विलायत में सीखा है ?”

“विलायत में नहीं, श्रीमती किरण की पाठशाला में ।”

“हाटिये, अच्छा बताइये, आप पापा के साथ मुझे निमन्त्रण देने क्यों नहीं आये थे ? कैफियत दीजिये ।”

“कैफियत के लिये तो फिर शहादत भी देनी पड़ेगी ।”

“यह मेरे साथ भी वैरिस्टरी ? कैफियत दीजिए, आप क्यों नहीं आये ? मेरी सख्त इन्सल्ट हुई । कहिए मैं न आती तो आप क्या करते ?”

“ओह, तब तो अच्छा खासा एक्जिडेंट हो जाता ?”

“कैसा ?”

“सिर दर्द का वहाना करके सबसे ऊपर की छत पर जो सटर-पटर टूटा-फूटा फर्नीचर डाल देने का कमरा है, वहीं जाकर पड़ रहता ।”

“बस ?”

“इसके बाद.....।”

“रहने दीजिये, कैफियत दीजिये ।”

“शहादत देनी होगी ।”

“किसकी ?”

उस काने परिडत की ! पापा उस मनहूस की राय लिये बिना कुछ करते ही नहीं । उसने कहा था, विवाह से पहिले दूल्हे का दुलहिन के घर जाना नहीं हो सकता ।”

किरण के मुखचन्द्र की अनेक किरणें फूट चलीं । उसने स्मितहास्य करके कहा—और उस दिन विलायत से आते ही दौड़े-दौड़े क्यों गये ?

“पापा के चरण स्पर्श करने ?”

किरण रूठ गई, उसने ऊपर मुँह फेर कर रूमाल से मुँहपर हवा करते हुए कहा—“ठीक है, तो आप कृपा कर पापा के पास जाइये । मुझसे आपका क्या काम है ?”

त्रिभुवन ने कहा—“परन्तु उस दिन पापा के पास जाना व्यर्थ नहीं हुआ । वहाँ जाकर चन्द्र किरण की सिन्धु ज्योत्सना से मैं आप्लावित हो गया, जिससे चार वर्ष का विदग्ध हृदय शीतल हो गया । देखती नहीं उस दिन से आज तक, इन ७ दिनों में मैं कितना तगड़ा, कितना सुन्दर हो गया हूँ । जैसे चन्द्रकिरण ने मेरे अस्तित्व को अपनी जगमग ज्योति से अलंकृत कर दिया हो । तुम तो जानती ही हो चन्द्रकिरण पृथ्वी पर निरन्तर अमृत वर्षा करती है । उसीसे जड़-जंगम, बन-वनस्पति सभी में जीवन आता है । फूल, गन्ध और रंगीन सौन्दर्य पाते हैं । लता गुल्म—‘हरितच्छटा, बन-विहंग मृदु कलरव, मृग-मृगपति उल्लाह और प्यासे प्रेमी प्रेमामृत पाते हैं । चन्द्रकिरण ही के स्पर्श से संसार इतना मनोरम हो गया है कि इसमें बारम्बार जीने की, हँसने की, उमंगें दिल में पैदा होती हैं ।”

उन्होंने आकाश की ओर आँख उठाकर निरभ्र गगन-मण्डल में स-नक्षत्र तारापति का तृतीया का क्षीण कलेवर देखा । और आगे बढ़कर विभोर बालाका कण्ठकित हाथ पकड़कर कहा—“देखो इस डेचमत्कार को ! इस कुशलावय को—जैसे हीरे के एक अखण्ड टुक

का बना हो। उज्ज्वल आलोक के असीम गगन-मण्डल में यह उद्भूत रेखा, कैसी शोभायमान है। यह कृश कलेवर और बाँकी अदा ?” उन्होंने सिर से पैर तक बालाका नख-शिख दर्शन किया—और फिर झुककर उसका कण्टकित हाथ चूग लिया। दोनों एक खण्ड पर बैठे। चिरअभिलषित भाव-भाषा और व्याज का मूक-वाक् विनिमय हुआ। उसी में व्यामोहित, दोनों मुग्ध प्राणों ने शरीर सम्पदा की बाधाओं का व्यतिक्रमण कर एकीभूत हो—चिरअभाव को भावपूर्ण कर दिया। सचराचर जगत जैसे उनके चर्म-चक्षुओं से लोप हो गया। दो व्यक्तित्व जैसे थे तो, पर अब नहीं रहे।

और जब वे भावालोक से जागृत होकर फिर जीवनलोक में आए—वह शानदार ग्रान्ड पार्टी खत्म हो चुकी थी। मेहमान अपने-अपने घर लौट रहे थे। दोनों प्राणियों ने हड़बड़ा कर एक दूसरे को देखा—किरण ने कहा—पापा क्या कहेंगे ?” युवक ने स्निग्ध नेत्रों से किरण को देखा। कसकर उसका हाथ थाम लिया और फिर वे एक दूसरे से अविच्छिन्न से लता गुल्मों को पार करते धीरे-धीरे प्रासाद के आलोक में आए। किरण ने कहा—देखूँ—किसने क्या भेंट दी है ?”

“चलो, मैंने भी अभी देखा नहीं है। सोचा था, तुम आओगी तो तुम्हारी आँखों से देखूँगा।”

जिस विशाल कमरे में मित्रों द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य भेंटों का भव्य प्रदर्शन था वहाँ उन्होंने देखा—सर ठाकुरदास लेडी शादी लाल को अमूल्य भेंटों का प्रदर्शन करा रहे थे। पतिपत्नी दोनों प्रसन्न हो होकर प्रशंसा कर रहे थे, अत्यन्त संकुचित भाव से ये दोनों भी उनमें मिल गए। बहुत वस्तु थी। उनमें कुछ अति कीमती थी। सर और लेडी शादी लाल ने एक मूल्यवान मोटर गाड़ी भेंट में दी थी। सर ठाकुरदास होठों में मुस्कान और आँखों में प्रच्छिन्न वेदना भरे

विनम्र और समयोचित शब्दों में प्रतिष्ठ भावी सम्मधी और समधिन को यथा सम्भव प्रसन्न करने में व्यस्त थे ।

त्रिभुवन को फिर एक सुयोग मिल गया । सर ठाकुरदास ने सम्मधी समधिन को विदा कह कर गाड़ी लाने का संकेत किया । वे आगे बढ़ गए । क्षण भर को ठिठक कर त्रिभुवन ने कहा—“किरण तुम्हारी तो कुछ भेंट मुझे मिली ही नहीं !”

किरण ने सिग्ध नेत्रों से देखा और कहा—मेरी जाँ वस्तु पसन्द हों ले लों । त्रिभुवन ने अनायास ही निकट आकर एक चुम्बन ग्रहण किया । किरण आनन्द, लाज और सात्विक भावों से विभोर हों भाग कर माता के पीछे जा लुपी ।

अन्ततः ये अन्तिम मिहमान भी विदा हुए !



३

मेहमान एक-एक करके विदा हो गये । नौकरों ने सब अनावश्यक बत्तियाँ बुझा दीं । सब सामान यथास्थान व्यवस्थित कर दिया । और फिर वे सब दिन भर के थके-मादे परिश्रम से चकनाचूर, मालिक की आज्ञा ले एक-एक कर विश्राम करने चले गये । रह गए केवल तीन व्यक्ति । एक गृहपति सर ठाकुरदास जो गम्भीर भाव से धीरे-धीरे बराण्डे में टहल रहे थे । दूसरा उनका खास खिदमतगार गोवर्धन जो उनके पीछे अचल नीरव-निस्पन्द दीवार से चिपका खड़ा था । उसका यह नित्य का कार्य था कि उसका मालिक सर ठाकुरदास जब

तक पलंग मसहरी में जाकर आराम न कर लें और जब तक वे सो न जायँ वह धीरे-धीरे उनके पैर दबाता रहे, उनके सो जाने पर उन्हीं के बगल की कोठरी में—जो मालिक ने उसे दी थी, लेट जाय । बहुधा रात-रात भर उसे मालिक के लिये जागना पड़ता था । मालिक सर ठाकुरदास बहुधा रात-रात भर जग कर इसी बरण्डे में टहलते रहते थे. बहुधा वे सोते-सोते उठ कर यहीं आकर टहलने लगते थे, तब गोवर्धन चाहे सोता हो या जागता, नीरव भाव से उठ कर उसी भाँति मालिक के पीछे दीवार में चिपक कर खड़ा हो जाता था । बहुत बार सर ठाकुरदास ने उसे समझाया, रोका, पर वह माना नहीं । बहस भी न की—उत्तर भी न दिया. केवल सिर झुका मालिक की बात सुनता रहा और अपनी आदत और इच्छा के अनुसार उसी भाँति स्वामी की परछाई के समान जगता रहा ।

गोवर्धन बहुत पुराना नौकर था । त्रिभुवन का जन्म उसी के सामने हुआ था । उसने मालिक का यौवन से दोस्त, आशाओं से लदफद और आनन्द से उत्फुल्ल जीवन देखा था ! मालिक की कोठी को गुंजायमान कर देनेवाली ठहाका-मार हँसी सुनी थी । अपने जीवन के प्रभात ही में वह मालिक की कृपा से निहाल हो चुका था । परन्तु अब, जब से मालिक निरीह, एकाकी, गुम-सुम हुये हैं, हँसे नहीं हैं, तब से वह नौकरी नहीं बजाता, अपना धर्म निबाहता है । उसे याद नहीं है कि उसने कब से तनखाह नहीं ली है, हर बार जब मालिक तनखाह देने लगते हैं, वह कहता है, मालिक, फिर ले लूँगा । अभी जरूरत तो कुछ है नहीं । खर्च हो जायगा । उत्तर सुनकर मालिक हँसते नहीं, कुछ कहते भी नहीं । एक बार उसे छिपी नजर से देखकर चुप हो जाते हैं और तब वह मालिक के सामने से कुछ देर के लिये टल जाता है, ठहर नहीं सकता ।

हाँ, तो वह मालिक की छाया की भाँति दीवार में चिपका खड़ा

है । तीसरा व्यक्ति त्रिभुवन है, उसके यौवन का गर्म रक्त उस सुरभित वायु के श्वास-प्रश्वास से अभी भी नहीं अघा पाया है, जिसे अभी कुछ देर पूर्व किरण बखेर गई थी । उसके शरीर के रक्त की प्रत्येक बूँद नाच रही थी, संसार उसे प्रिय, आल्हादपूर्ण और रंगों से ओत-प्रोत दीख रहा था । वह बहुत-सी बातें सोच रहा था । सफलता, सौभाग्य और जीवन की सीढ़ी पर उसने कदम रखा था । जीवन-ज्ञान-सत्साहस, मेधा, प्रतिभा और आज का अटूट भरना उसके व्यक्ति से फूट कर रिस रहा था । वह कोठी के पीछेवाले रमने की उस मालती-लता के पास दूर टिमटिमाती हुई बत्ती की रोशनी में बारम्बार चक्कर लगा रहा था, किरण की एक ज्योतिष्मती मूर्ति इस समय उसके मस्तिष्क में थी, जो हीरक जटित धनुष की भाँसि उसे भासित हो रही थी । वह उसका क्या करे, यह सोच ही न पा रहा है । वह कैसे, किन भावों में, कहाँ से उस प्रिय भावना को अंगीभूत करे—जैसे यह उसके वश की बात ही न रह गई थी ।

सर ठाकुरदास ने विचार-सागर में से जैसे एक उछाल ली । उन्होंने चौंक कर सामने घड़ी देखी, ग्यारह बज चुका था । फिर उन्होंने घबरा कर गोवर्धन की ओर देखा—और कहा—

“बहुत रात हो गई गोवर्धन, क्या भैया सोने चले गये ?

“नहीं, सरकार, वे उधर रमने में टहल रहे हैं ?”

ठीक है, तो तुम उन्हें मेरे पास लाइब्रेरी में भेज दो । और देखो आज तुम्हारी छुट्टी है, जाकर आराम करो । और याद रखो—मैं तुम्हें यह हुक्म दे रहा हूँ, समझे ?” रामधन ने सिर झुकाया और चल दिया ।

आहट पाकर त्रिभुवन ने कहा—“गोवर्धन क्या बात है ? क्या सरकार सोने चले गये ।”

“नहीं भैया, सरकार लाइब्रेरी में हैं, और वही आप को याद किया है ।”

“अच्छा, मैं जाता हूँ ।”

और वे उसी दम लम्बे-लम्बे डग भरते हुये लाइब्रेरी की ओर चले । उनके पीछे तनिक हटकर गोवर्धन भी ।

लाइब्रेरी बहुत विशाल और भव्य थी । उनमें बहुत-सी दुर्लभ और बहुमूल्य पुस्तकें संग्रहीत थीं, सर ठाकुरदास को अध्ययन का भारी शौक था, अब तो उनका दिन-रात का अधिकांश समय वहीं बीतता है । एक पार्श्व में खिड़की के सहारे उनकी सुसज्जित मेज लगी थी, जहाँ बैठ कर वे लिखते-पढ़ते थे । उसीके सम्मुख दीवार पर पूरे कद का एक पोर्ट्रेट टँगा था, जिसका चाँदी का फ्रेम बहुत भव्य था । पोर्ट्रेट सर ठाकुरदास की पत्नी का था । जीवन के प्रभात ही में पुत्र-जन्म के बाद ही सर ठाकुरदास का पत्नी-विच्छेद हो गया था । तब से सर ठाकुरदास ने पत्नी की स्मृति और प्राणप्रिय पुत्र को हृदय से लगा कर अपने जीवन की दुपहरी काट दी । इस घटना से सर ठाकुरदास की प्रकृति में भारी परिवर्तन हुआ अवश्य, उनका आनन्द और उल्लास का जीवन समुद्र-सा गम्भीर हो गया । उनका हास्य सम्पुटित होठों में छुप गया । उनके लाल कमल-दल के समान रसीले नेत्रों के चारों ओर स्याही दौड़ गई । वे एकवारगी ही कम-सखुन हो गये । परन्तु इस परिवर्तन से जो गरिमा और गम्भीरता उनके जीवन में आई उससे तथा इन बीस वर्षों के तप और संयम के पवित्र जीवन से—वे तपाये कुन्दन की भाँति निर्मल और प्रदीप्त हो उठे । लाखों मनुष्यों से परिपूर्ण इस महानगरी में—सब सांसारिक प्रलोभनों को मन-वचन-कर्म से त्यागनेवाले, एक पुरुष सर ठाकुरदास ही थे ।

परन्तु उन्होंने कभी अपने ऊपर गर्व नहीं किया । अपनी

चरित्र की सम्पदा को तोल कर नहीं देखा । अपनी निष्ठा में वे त्रुटि ही देखते रहे । इसी से वे दिन-दिन संकोचशील और एकान्तप्रिय होते गये । इसी से एक प्रकार का तप वे तपते रहे । और आज वे समुद्र के समान गम्भीर और मर्यादा के आदर्श पुरुष हैं ।

सर ठाकुरदास पत्नी के पोर्टेंट के सम्मुख चुपचाप खड़े होकर उस मूर्ति को निहारते रहे । आज उनकी आज्ञा के बिना ही इस चित्र का विशेष शृंगार किया गया था । उसे चारों ओर से फूलों से सजाया गया था, उसके चारों ओर सुगन्धित मोमबत्तियाँ जलाई गई थीं । सुगन्धित अगर की धूप-बत्तियाँ भी जलाई गई थीं । इन सब कारणों से पोर्टेंट की शोभा शतसहस्र गुण बढ़ गई थी । कुशल चित्रकार ने मूर्ति अति भव्य बनाई थी । यह उनकी पत्नी की मूर्ति उनके विवाह के बाद ही तैयार की गई थी । इस मूर्ति में उनकी पत्नी विवाह की साड़ी, विवाह की ब्रीड़ा, विवाह की श्री और विवाह की सौभाग्य-सम्पदा से भरपूर खड़ी थी । सर ठाकुरदास जब-जब इस मूर्ति को देखते—उन्हें अपने विवाह का वह भव्य समारोह ज्यों का त्यों स्मरण हो आता । उन्हें ऐसा प्रतीत होता जैसे प्रातःकालीन वायु से प्रेरित, ओस से भीगा हुआ कोई गुलाब का सम्पूर्ण फूल, चित्रपट से पृथक् होकर कुछ अपार्थिव सा दान उन्हें दे रहा है । मूर्ति में चित्रकार का प्रदत्त सौन्दर्य तो था ही, मूर्ति की अधिष्ठात्री उस रमणी का भी अनुपम सौन्दर्य था । सम्पूर्ण चित्र जैसे एक अम्लान पारिजात पुष्प था और मानो एक क्षण में ही वह खिला चाह रहा था । चित्र की इस सुषमा का कारण चित्र की अधिष्ठात्री उस महिला का भव्य रूप समझा जाय या चित्रकार का अनूठा कौशल—यह ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता था ।

सर ठाकुरदास बड़ी देर तक चुपचाप उस पोर्टेंट के सामने खड़े रहकर आत्मविभोर से एकटक उसे निहारते रहे । देखते-देखते उनकी

आँखें गीली हो आई, उनके पुत्र त्रिभुवन आकर उनकी बगल में खड़े हो गये, इसका भी उन्हें कुछ भान न हुआ। पुत्र ने तब थोड़ा खाँसा। पुत्र को निकट देखकर ठाकुरदास ने थोड़ा आत्म-संवरण किया। फिर प्रेम से उनके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—“बेटे अब पूज्य पूजन करो। ये तुम्हारी माँ हैं, जो तुम्हें मेरी गोद में डालकर अपना सूना आँचल लेकर चली गई। तब से अब तक मैंने तुम्हें माँ और बाप दोनों ही की भाँति पाला। अब तुम समर्थ हुए। इस घर की, इस कुटुम्ब की यह कुलदेवी हैं। अपने हाथों मैंने अब से वीस वर्ष पूर्व इनकी स्थापना की थी, स्वीकार करता हूँ पूजा की थी, चाहूँ तो कह सकता हूँ, पूजा करता रहा हूँ। मेरे पुत्र, यह तुम्हारे विदग्ध-हृदय पिता की गवाँक्ति नहीं कातराँक्ति है, मेरे कहने का मतलब यह है कि अब मेरा सारा संयम, धैर्य और तप खर्च हो चुका। पूज्य पूजन की सामर्थ्य अब मुझमें नहीं रही दीखती है। मेरे बेटे, आज से तुम इस काम का भार अपने ऊपर लो। आओ आज मेरे सामने पूज्य पूजन करो, और वचन दो—कभी इस काम में गफलत नहीं करोगे, कभी नहीं करोगे। मैं अब नहीं देख पाऊँगा पुत्र, परन्तु यह मेरी वसीयत है, तुम्हारे लिये। कहो स्वीकार करोगे तो ?

त्रिभुवन ने काँपते हाथों से पिता के दोनों हाथ पकड़ कर अपना माथा उनपर टेक दिया, उन्होंने कहा—“बाबूजी, ऐसा क्यों कह रहे हैं ! मैं पूज्य पूजन करूँगा तो आप देख क्यों न सकेंगे ? ऐसा क्यों ?

सर ठाकुरदास के संयम ने सचमुच ही जवाब दे दिया। वे पुत्र के सम्मुख ही रो पड़े। रोंते-रोते उन्होंने पुत्र को खींचकर छाती से लगा लिया। इसके बाद उन्होंने स्थिर, अकम्पित वाणी से कहा—“त्रिभुवन, तुम तो अब नासमझ बालक नहीं हो—फिर भी जो बात मैं तुमसे कहता हूँ—उसके समझने की तुम्हारी आयु नहीं है। देखा कभी-कभी वेदनाएँ भी जीवन का सहारा बन जाती हैं। बहुत लोग

सुख के साधनों में डूबे रहकर जीवन व्यतीत करते हैं, बहुत लोग दुःख और वेदनाओं के बवण्डर में जीवन खोते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी जीवन हैं जो वेदनाओं की सम्पदा ही से सम्पन्न हैं, वेदना ही उनकी आध्यात्मिक और भौतिक, एहिलौकिक और पारलौकिक कमाई है। वेदना उनका दर्शन है, वेदना उनका सौभाग्य है। वेदना का पीड़ानन्द जब उन्हें आप्यायित करता है तो उनकी अन्तरात्मा सुख-सागर में डूब जाती है। पीड़ानन्द का यह सुख तो केवल वही जानते हैं मेरे पुत्र, यह ब्रह्मानन्द से रंचमात्र भी कम नहीं है। तुम्हारा यह भाग्यशाली पिता उसी वेदना की सम्पदा से सम्पन्न है। उसने अपने जीवन में पीड़ानन्द प्राप्त किया है। इसीसे, आज से २० वर्ष पूर्व जब मेरी आयु तुम्हारे ही समान थी, और मेरा हृदय तुम्हारे ही समान जीवन की ज्योति से जगमगा रहा था, तब तुम्हारी यह पुण्य-मूर्ति माता, मुझे पीड़ानन्द के सुखसागर में स्नान कराकर अन्तर्धान हो गई। उससे मेरी सारी वासनाएँ, जिनके साधन मेरे चारों ओर बिखरे पड़े थे, उसी समय जलकर भस्म हो गई, और मैं सुख-स्नात, सुखपूत-अतीन्द्रिय हो, इन्द्रियातीत पीड़ानन्द का पान कर तब से अब तक जीता रहा। इससे मुझमें ऐसी शक्ति आ गई कि जब तुम्हारी इस पुण्यरूपा माँ ने तुम्हें मेरी गोद में डाला—उस क्षण के आनन्द से, आज तक, जब कि मेरे जीवन में उस सुखस्पर्श की भावना मात्र ही रह गई—मैंने कोई अन्तर ही नहीं देखा। उस बात को बीस वर्ष बीत गए। परन्तु इस चिरकाल में मैंने कभी भी अपने को उससे दूर नहीं पाया। मैंने स्वयं बाहर से उठाकर उसे अपने में रख लिया। वह प्रियदर्शिनी जैसे तब मेरे सम्मुख रह कर मुझे आनन्द वर्षा से आतृप्त करती रहती थी—वैसे ही अब—इस चिरकाल में भी करती ही रही। अन्तर इतना रहा कि तब बाहर से वह वर्षा मेरे इस पतनोन्मुखी शरीर पर होती और अब मेरी अन्त-

रात्मा पर, अविनश्वर सत्त्व पर । इसीसे पुत्र, मैंने अपने को इस पीड़ानन्द की सम्प्रदा से अपने को निहाल पाया । और तुम्हें पालने-पोसने की सामर्थ्य भी रख सका ।”

इतना कहकर सर ठाकुरदास कुछ क्षणों के लिए चुप हो गए । फिर स्निग्ध कण्ठ से उन्होंने कहा—“सम्भव है बेटे, तुम इस समय मेरी इस बात को न समझ पाओ, मैं कह ही चुका हूँ कि तुम्हारी यह आयु वेदना के इस दार्शनिक तत्त्व को समझने के योग्य नहीं है—पर यह तो तुम अब समझ ही सकोगे कि इन सब कारणों से, और कुछ नहीं तो केवल मेरी खातिर ही सही—पूज्य पूजन तुम्हारे लिए कितना आवश्यक है ! मैं चाहता हूँ कि तुम इसे अपनी कुल परम्परा समझ कर करो ।”

“मैं ऐसा ही करूँगा पिताजी, माँ के दर्शनों की मुझे स्मृति नहीं है, पर मैंने माँ की इस मूर्ति को सदा हँसते देखा है । मैं जब भी उनके विषय में सोचता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे फूलों के उद्यान में उड़ रहा हाँऊँ । मेरी दिव्यरूपा माँ, मेरी पूज्या है । और मैं पूज्यपूजन में कभी असावधान न रहूँगा ।”

“परन्तु पुत्र” सर ठाकुरदास ने उतावली से कहा—“यह तो तुमने मेरी आँखों से देखा है । तुम एक शिक्षित, ज्ञान नेत्रों से सम्पन्न पुरुष हो... अब तुम्हें सब कुछ अपने नेत्रों से देखने का भी अवसर हो सकता है, अपने नेत्रों से तुम मेरे पुत्र, अतीत को तो देख न सकोगे । देखोगे केवल वर्तमान को जो बहुधा इतना असत्य—अस्थिर और भ्रान्त हो सकता है कि उससे जल्दी में बहुत लोग अन्यायाचरण कर बैठते हैं । इसी भय से बेटे, मेरा आज संयम बह गया और तुमने आज अपने जन्म दिन के अवसर पर मेरे आँसू अन्ततः अपनी आँखों से देख ही लिये !”

त्रिभुवन ने झुक कर पिता के चरणोंपर माथा टेका । उसने कहा—

“पिताजी, कुछ ऐसी भी बातें हैं जहाँ बुद्धि-विवेक और न्याय-नीति कुछ भी काम नहीं देती। केवल श्रद्धा और निष्ठा ही से वहाँ निर्वाह होता है। मैं समझता हूँ, पूज्यपूजन का आधार श्रद्धा और निष्ठा ही है, विवेक-बुद्धि और न्याय नीति नहीं। फिर आप ऐसा क्यों सोचते हैं?”

“अब नहीं सोचूँगा। तुमने तथ्य को जान लिया। तो पुत्र, तुम अपना कार्य करो—मैं देखूँ।”

युवक त्रिभुवन ने मूर्ति के चरणों में माथा टेक दिया, और फिर कहा—“माँ, पूज्यपूजन देखने-दिखाने के लिये नहीं—आत्मतुष्टि के लिये होता है, सो वह आज से मेरा जीवन संगी हुआ। आज तुम्हारे पूत चरणों की शरण में मैंने पूज्य पिता जी से यह गहन दार्शनिक, तथ्य ग्रहण किया कि मैं बुद्धि-विवेक और न्याय-नीति को नहीं—श्रद्धा और निष्ठा को अपना-जीवन सत्त्व अर्पण करूँ—सो यही मैं करूँगा। मैं वचन देता हूँ, माँ, मैं वचन देता हूँ। युवक त्रिभुवन ने फिर अपना मस्तक पोर्ट्रेट के चरणों में झुका दिया। सर ठाकुरदास ने पुत्र को खींच कर अपनी छाती से लगा लिया। उन्होंने कहा—पुत्र आज मेरा जीवन-तप सफल हुआ।

दोनों धीरे-धीरे बाहर हुए। उनके पीछे परछाई की भाँति गोवर्धन भी।

४

प्रमुख नागरिक और नामी वकील एवं एडवोकेट जनरल गोपाल-दास की निर्मम हत्या का समाचार प्रातःकालीन संस्करणों में नगर

के सभी प्रमुख दैनिक पत्रों में छापे गये। हत्याकारिणी एक स्त्री है तथा उसने निरन्तर ८ घण्टे तक नगर की समर्थ पुलिस का डटकर सामना किया है। यह समाचार भी अच्छी तरह नमक मिर्च लगाकर पत्रों में छापे गए थे। पत्रों में यह भी छापा गया था कि हत्याकारिणी ने अपना परिचय तथा हत्या का कारण बताने से इन्कार कर दिया है। तथा एक यह वाक्य कह कर कि—“पूज्य-पूजन के लिए यह काम किया गया है” उसने अपने होठ-सी लिए।

इन सब समाचारों से नगर में सनसनी फैल गई। लोग भाँति-भाँति के अनुमान लगाने और कल्पनायें करने लगे। लोगों में इस स्त्री के परिचय जानने की भी बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हो गई।

सर ठाकुरदास को नित्य ही बहुत जल्द उठने की आदत थी। वे यद्यपि रात में बड़ी देर में सोए थे। एवं वे श्रान्तकृान्त तथा चिन्तित भी थे। फिर भी वे ठीक समय पर उठ गये। गोवर्धन तो उनकी छाया-मूर्ति ही था। उसने नित्य की भाँति सब आवश्यक सामग्री उन्हें जुटा दी। नित्य-कर्म से निवृत्त हो जब वे चाय पर बैठे तो चाय के साथ दैनिक पत्रों के प्रातःकालीन संस्करण भी उनके सम्मुख उपस्थित किये गये। पत्रों के मुख पृष्ठ पर ही उक्त हत्याकाण्ड छापा था। उसपर दृष्टि पड़ते ही सर ठाकुरदास का चेहरा सफेद हो गया। रक्त का कोई चिह्न उनके मुँह पर न रहा।

वे निर्जीव से कुर्सी के एक ओर लुढ़क रहे। अखबार उनके हाथ से छूट गया।

गोवर्धन ने दौड़ कर उन्हें उठाया। सूचना पा त्रिभुवनदास दौड़े आये। गृह चिकित्सक डा० प्राणनाथ को फोन कर दिया गया। वे १० मिनट में ही आ उपस्थित हुए। उन्होंने सावधानी से रोगी को देखा—उपचार व्यवस्था की, फिर त्रिभुवन दास को एक ओर ले जाकर कहा—खूब सावधान रहने की आवश्यकता है। उनके समुद्र

के समान गहन और विशाल हृदय में बहुत से प्रिय और अप्रिय कारण छिपे पड़े हैं। नहीं कहा जा सकता—इस समय एकाएक किसने उनके आहत प्राणों को स्पर्श किया है, फिलहाल उन्हें पूरा विश्राम मिलना चाहिये—तथा कोई ऐसी बात या घटना, जिससे उनके मन में कोई अप्रिय असहनीय स्मृति उदित हो, उनके नेत्रों के सामने नहीं आने देना चाहिये। अभी मैं एक नर्स भेज देता हूँ और हर तीन घन्टे में स्वयं देखता रहूँगा। हाँ, किन्हीं प्रिय जनों को आप सूचना देना चाहते हों या किन्हीं ऐसे व्यक्ति को बुला सकते हों कि जिन्हें देखकर वे प्रसन्न हों, मनोवेदना भूल जायँ तो अवश्य ऐसे व्यक्ति को तुरन्त बुला लीजिये।”

डा० प्राणनाथ इस घर के पुराने चिकित्सक ही नहीं, सर ठाकुरदास के प्राण-सखा, बाल-सहपाठी और सरल शुभचिन्तक पुरुष थे। सर ठाकुरदास यदि दिल खोल कर किसी से बात कर सकते थे तो डा० प्राणनाथ से ही। नर्स आ गई। उसने सब व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। त्रिभुवनदास ने सब हाल सुनकर समझा सम्भवतः हत्याकांड का निर्मम समाचार पढ़ कर ही पिता को मर्मव्याधा पहुँची है, उन्होंने एक सप्ताह तक घर में समाचार पत्रों का आना रोक दिया, तथा सचेत होने पर पिता के सम्मुख इस कुसमाचार की कोई स्मृति न रहने पावे, इसकी भी समुचित व्यवस्था कर दी। उन्होंने सर शादीलाल को भी सूचना भेज दी। सूचना पाते ही वे किरण और उसकी माता को लेकर आ पहुँचे। किरण को सर ठाकुरदास कितना चाहते थे, यह त्रिभुवन को भली-भाँति विदित था।

दोपहर होते-होते सर ठाकुरदास होश में आ गये। अतः तीसरे प्रहर जब डाक्टर उन्हें तीसरी बार देखने आये तो बाहर आकर उन्होंने प्रसन्न मुद्रा से कहा—डीयर त्रिभुवन दास, सर ठाकुरदास अब खतरे से बाहर हैं। वे किरण को बहुत याद कर रहे हैं। केवल

किरण उनके पास जा सकती हैं किन्तु बातचीत बिल्कुल न को जाय, तथा और कोई उनके निकट न जाय। उनका हृदय बहुत ही नाजुक अवस्था में है।

किरण सर ठाकुरदास को देखने के लिये बहुत ही अधीर हो रही थी, वह बिना ही अनुमति की प्रतीक्षा किये, रोगी के कमरे की ओर दौड़ गई।

दवे पाँव उसके पीछे ही पीछे सर शादीलाल और उनकी पत्नी भी गई। त्रिभुवनदास ने चिन्तित भाव से सबसे पीछे उस कमरे में प्रवेश किया। सबने देखा—किरण सर ठाकुरदास के हाथ को अपने दोनों हाथों में दबाए फर्श पर घुटनों के बल बैठी है, और सर ठाकुरदास मुस्कुरा रहे हैं। त्रिभुवनदास ने—यदि अति बालकाल की सारी स्मृतियों को एक तरफ डाल दिया जाय तो अपने जीवन में प्रथम बार ही पिता को मुस्कुराते देखा। सर शादीलाल भी उनकी इस समय की प्रसन्न मुद्रा देखकर बाग-बाग हो गये। परन्तु लेडी शादीलाल ने इस हास्य में कुछ अशुभ छाया के दर्शन किए। उनका मुँह गम्भीर हो गया। परन्तु किसी ने उनकी ओर आँख उठा कर देखा नहीं। सबका ध्यान सर ठाकुरदास की प्रसन्न मूर्धमुद्रा पर था।

सर ठाकुरदास का एक हाथ किरण के हाथों में था, दूसरा हाथ वे उसके मस्तक पर रखकर हँसते हुए कह रहे थे, 'किरण, मैं जानता था कि तू आएगी, अब तू यहीं मेरे पास रह, मुझे छोड़ कर न जा। क्या कल मैंने पार्टी में.....'

सर ठाकुरदास यह सब एक प्रकार के असम्बद्ध-अस्वाभाविक बोली बोल रहे थे। लेडी शादीलाल से न रहा गया, उन्होंने आगे बढ़कर कहा—“सर, अब आप अधिक मत बोलिए—किरण अब यहीं है, आप बस आराम कीजिए।”

इसपर सर ठाकुरदास एक बारगी ही हँस पड़े। कुछ उत्तेजित

स्वर में बोले—“ठीक कहती हूँ आप, अब मुझे भय क्या है”—वे फिर हँसे ।

किरण ने उठकर उनके दोनों हाथों को आहिस्ता से शाल में छिपा दिया । फिर कहा—“पापा, मैं आपके लिये कुछ लाऊँ ?”

“लाओ बेटी, यही तो मैं कह रहा था, जो इच्छा हो लाओ ।” वे फिर हँस दिये ।

किरण मुसम्मी का रस लेने चली गई ।

त्रिभुवनदास ने देखा कि सर ठाकुरदास के स्वर में ही अन्तर है, उन्होंने धीरे से सर शादीलाल के कान में कहा—“क्या मैं डाक्टर को बुलाऊँ ?”

परन्तु सर ठाकुरदास ने सुन लिया । उन्होंने कहा—“डाक्टर को किसलिए ? क्या मैं बीमार हूँ ?”

वे उत्तेजित होकर उठने लगे, परन्तु दूसरे ही क्षण वे कटे वृद्ध की भाँति विरतर पर गिर गए । उनका चेहरा एक बारगी ही मुर्दे के समान हो गया । उनका शरीर, हाथ-पैर सब निस्पन्द हो गये । किरण मुसम्मी का रस ला रही थी—चीत्कार कर उठी, रस का प्याला उसके हाथ से छूट गया । सर शादीलाल और लेडी लपक कर पलंग की ओर दौड़े । त्रिभुवनदास ने डाक्टर को फोन किया ।

डाक्टर ने देखकर गम्भीर मुद्रा से कहा—“किन्तु आप लोग घबराइए नहीं, मैंने कहा था कि आप उन्हें उत्तेजित न करें, पर आपने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया ।”

डाक्टर का उपचार सफल नहीं हुआ । सर ठाकुरदास होश में नहीं आए । डाक्टर ने कहा—“कन्सल्ट करना होगा ।”

परन्तु डाक्टरों का बोर्ड भी कुछ लाभ न दे सका । किरण सर ठाकुरदास की पट्टी पर सिर रखकर रोने लगी । घर में चिन्ता और उदासी का वातावरण छा गया । त्रिभुवनदास ने बालक की भाँति

अधीर होकर सर शादीलाल के वक्षपर सिर रखकर कहा—“अब क्या होगा पापा ।”

किन्तु लेडी शादीलाल ने धैर्य नहीं खोया । उन्होंने कहा—“यह क्या वाहियात बात है । उन्हें आराम करने दो । और वे स्वयं सर ठाकुरदास के पलंग पर बैठ कर ध्यान से उनके प्रत्येक श्वास का निरीक्षण करने लगीं । दिन व्यतीत हुआ—रात हुई, और बीत गई, सर ठाकुरदास की चेतना नहीं लौटी । डाक्टरों ने त्रिभुवनदास को खतरे की सूचना दे दी—परन्तु उनका भागीरथ प्रयत्न निरन्तर जारी रहा ।

दूसरे दिन दोपहर से कुछ प्रथम सर ठाकुरदास को चेतना आई । उन्होंने स्थिर दृष्टि से अपने चारों ओर देखा, किरण दौड़ कर उनके वक्ष पर सिर रख कर फफक-फफक कर रोने लगी । इस बार सर ठाकुरदास के चेहरे पर कल का हास्य नहीं था । उन्होंने कठिनाई से उसके सिर पर हाथ रखा । सब लोग उनके पलंग के पास आ जुटे, उन्होंने मन्द स्वर से कहा—

“किरण !”

इस एक ही शब्द में अत्यन्त वैकल्य और वेदना थी ।

किरण ने आँख उठाकर देखा ।

सर ठाकुरदास ने कहा—“क्या मैं सो गया था घेटी ?”

किरण बोल न सकी—पर उसने सिर हिलाकर हाँ कहा ।

“तां मुझे कुछ दो ।”

किरण जल्दी से मुसम्मी का रस बना लाई । सर ठाकुरदास ने धीरे-धीरे चम्मच के सहारे रस पान किया ।

इसी समय डाक्टर ने आकर उन्हें देखा । उन्होंने डाक्टर को धन्यवाद देकर कहा—“डाक्टर, मुझे कुछ कर्तव्य-पालन करना है, क्या आप मुझे थोड़ी शक्ति दे सकेंगे ?”

“सर ठाकुरदास आपको हुआ ही क्या है ? आप ठीक हैं, जरा-सी कमजोरी है, परन्तु आप कृपया विश्राम करें ।”

‘आप ठीक कहते हैं, विश्राम करूँगा । परन्तु अपना कर्तव्य पालन करने के बाद । इसके बाद उन्होंने सर शादीलाल की ओर मुँह उठा कर कहा—“सर, मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं, किन्तु केवल आप से ।”

उन्होंने स्नेह-पूरित ढंग पर उनका हाथ पकड़ लिया ।

सर शादीलाल ने अभिप्राय सूचक दृष्टि से सब की तरफ देखा । सब लोग वहाँ से चले गए । एकान्त पाकर उन्होंने सहज शान्त स्वर में कहा—“सर शादीलाल, आप मेरे सुख दुःख के साथी परम आत्मीय हैं, मैं आशा करता हूँ मुझ दीन व्यक्ति से आप सहानुभूति का व्यवहार करेंगे । तथा लेडी भी इस जाते हुए अकिञ्चन के सब अपराध क्षमा करेंगी ।

सर शादीलाल ने कहा—“यह आप क्या कह रहे हैं सर ।”

“मैं केवल आवश्यक बात ही कह सकता हूँ सर, बात यह है कि किरण की शादी त्रिभुवन से नहीं हो सकती । मुझे मेरा वचन फेर दीजिए । मैं किरण को वचन-मुक्त करता हूँ ।”

“यह क्या बात ?”

“कृपया मेरे तकिये के नीचे से चाभी लेकर वह बक्स खोलिए—उसमें एक लिफाफा है, उसे निकाल लीजिए ।”

सर शादीलाल ने लिफाफा निकाल कर सर ठाकुरदास के हाथों में दिया । उसे काँपते हाथों से सर शादीलाल के हाथों में देते हुए सर ठाकुरदास ने कहा—“यह वचन-भंग का जुर्माना है, विवाह के समय इसे किरण को दे दीजिएगा और सुपात्र देख उसका विवाह कर दीजिए...।”

“किन्तु....।”

सर ठाकुरदास ने उन्हें नहीं बोलने दिया । नेत्रों ही में उन्हें रोक कर कहा—त्रिभुवन आपही का पुत्र है, उस पर ऐसा ही स्नेह रखिएगा जैसा अब तक रखते रहे हैं । रखिएगा ? वचन दीजिए ?”

सर ठाकुरदास ने अत्यन्त कातर दृष्टि से सर शादीलाल की ओर देखा ।

सर शादीलाल की आँखों में जल भर आया । उन्होंने कहा—
“सर. मैंने कभी आपकी कोई बात नहीं टाली । परन्तु आप किरण के साथ यह जुल्म क्यों कर रहे हैं, वह सुनेगी तो जिन्दा न रहेगी, आप समझते नहीं हैं ।”

“सब समझता हूँ सर । पर मैंने जो कुछ कहा, वही होना चाहिए ।”

“पर मैंने तो किरण को आपकी पुत्री तथा त्रिभुवन को अपना पुत्र माना है ।”

“इसी से तो, सर शादीलाल ।”

सर ठाकुरदास कुछ देर आँखें बन्द करके चुपचाप पड़े रहे । उनके दोनों हाथ उनके वक्ष पर थे, सर शादीलाल ने वह लिफाफा धीरे से उनके पलंग पर रखते हुए कहा—

“कुछ तो दया कीजिए सर, किरण पर दया कीजिए ।”

सर ठाकुरदास ने गहरी दृष्टि से सर शादीलाल को देखा—फिर कहा, “तो सर शादीलाल, मैं केवल अपने वचन से आप को मुक्त करता हूँ, अब आप और किरण स्वेच्छा से—जैसा ठीक समझें करें । पर यह स्मरण रखिए कि आप भी अब वचनबद्ध नहीं हैं । हाँ, यह लिफाफा तो आप रखिए ।”

“रख लेता हूँ और आप की बात रखता हूँ । इस विश्वास से कि आप किसी कारण ही से ऐसा कह रहे हैं । पर सर ठाकुरदास, किरण आपकी पुत्री है ।”

“तभी ता ?” सर ठाकुरदास के मुख पर फिर हास्य की रेखा बिखर गई । और एक क्षण भर बाद ही उनके श्वास की गति भी अवरुद्ध हो गई । सर शादीलाल हाथ में वह लिफाफा लिए हतबुद्धि से खड़े रह गए, और जब वे रूमाल से आँखें पोंछते हुए नीचा सिर किए कमरे से बाहर निकले—तो एक चीत्कार ने उस विशाल भवन के स्तब्ध वातावरण का क्रन्दन से भर दिया । किरण मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर गई । सर शादीलाल ने दौड़कर उसे गोद में उठा लिया । दूसरे लोग कमरे की ओर दौड़ पड़े ।



५

मृत्यु का जीवन से क्या सम्बन्ध है यह मैं नहीं जानता हूँ । मृत्यु जीवन में, अंत प्रांत जीवन ही का एक अङ्ग है या कि वह कहीं बाहर से आकर जीवन को आक्रान्त करती है, यह भी मैं नहीं जानता हूँ । अभी तक मृत्यु से भयभीत होने का मुझे अवसर नहीं मिला है, यद्यपि मैं मृत्यु का व्यवसायी हूँ, चिकित्सक हूँ, जीवन में मृत्यु के शत सहस्र रूप देख चुका हूँ परन्तु यह भेद मुझपर प्रकट नहीं हुआ कि मृत्यु आई किस मार्ग से और जोवन गया किस मार्ग से । फिर भी एक बात स्वीकार करता हूँ कि ऐसे अवसर आते हैं जब मृत्यु को मुझे पुकारना पड़ा है, परन्तु वह नहीं आई है । मैं ऐसे भी बहुत जनों को जानता हूँ जिन्होंने बलात् अपना जीवन मृत्यु की गोद में डाल दिया है ।

मृत्यु एक दुःखद घटना है, यह भी मैं मानता हूँ । फिर भी मेरा

यह निश्चित मत है कि जीवन को जैसे रात और दिन प्रगति देते हैं, वैसे ही मृत्यु और जीवन, दोनों ही जीवन को प्रगति देते हैं। दिन भर का थका मादा पुरुष जिस प्रकार रात्रि में सुखद कोमल शैथ्या पर आराम से पेर फैला कर सोने में सुख पाता है, उसी प्रकार जीवन जब संघर्ष और थकान की क्लान्ति से चूर हांकर मृत्यु की शान्तिदाई सेज पर सोता है, तब वह चिर विश्राम का सुख पाता है। उस विश्राम के बाद जीवन फिर जागता है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु जीवन तो जागरण ही का नाम है, जब कि मृत्यु निद्रा है। तब जहाँ निद्रा है वहाँ जागरण है, जहाँ जागरण है वहाँ निद्रा है। जैसे जागरण और निद्रा का चिर प्रवाह निरन्तर जारी है, वैसे ही जीवन और मृत्यु का भी। जैसे जागरण का प्रभात आशा-उत्साह-ताजगी और प्रतिक्रियाएँ जीवन में लाता है, उसी प्रकार जीवन का गतिमान बनाता है। और जैसे सन्ध्या काल के प्रशान्त वातावरण में कोमल सुखद सेज पर निद्रा-वश्राम, शान्ति और विसर्ग लाती है, वैसे ही मृत्यु भी। कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन और मृत्यु ये दोनों ही जीवन के अपङ्ग अङ्ग हैं, जैसे जीवन जीवन है, वैसे ही मृत्यु मृत्यु है। मृत्यु से जीवन नष्ट नहीं होता है अपितु, जीवन आप्यायित होता है।

इसी से मुझे कहना पड़ा कि सर ठाकुरदास की मृत्यु होने पर भी सर ठाकुरदास के जीवन का अन्त नहीं हुआ। कहिये तो, किसका मृत्यु से अन्त होता है? परम्परा से हमारे बाप-दादे पुरखे जो मर गये हैं—उनका अस्तित्व क्या लोप हो गया? विश्व का इतिहास तो मृत्युपत्र का शृङ्खलाबद्ध इतिहास ही है। पूर्वजों के प्राति तो हम दर्प से उनके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि—वे थे।

सर ठाकुरदास नहीं रहे। परन्तु उनकी शालीनता उस घर में वैसी ही रही। सर शादीलाल और उनकी पत्नी-पुत्री, दोनों ही

अभां उनके घर थीं। सब श्राद्ध कर्म उनकी सहायता परामर्श से सम्पन्न किये गये। परन्तु सर शादीलाल के मस्तिष्क में सर ठाकुरदास के अन्तिम शब्द गूँज रहे थे। किसलिये उन्होंने किरण से त्रिभुवन के विवाह का निषेध किया है ? किसलिये उन्होंने यल और साध से चिरधिष्ठित इस वासना का अपने अन्तकाल में विसर्जन किया ? यह तो विचारने के योग्य भी बात नहीं है कि वे किरण को प्यार नहीं करते थे, अपने अनूटे प्यार का परिचय तो वे अपने वाक्यों से, प्रथम ही दे गये। फिर जहाँ वे एक बार किरण को स्पर्श कर चिर विस्मृत हास्य को हँस सके, वहाँ वे किरण को विसर्जन करती बार प्राणों को भी विसर्जन कर गये। क्या यह बात सत्य नहीं है कि किरण के विसर्जन के साथ ही, उन्हें उसी के लिये प्राणों का भी विसर्जन करना पड़ा।

एकाएक उनका ध्यान उस लिफाफे पर गया। यह क्या है ? अवश्य ही यह उनका कोई दानपत्र है। किरण को उन्होंने कुछ दिया है। और इसे उन्होंने दण्ड स्वीकार किया है। इस लिफाफे में चाहे भी जो कुछ हो, परन्तु वे इसे दण्ड क्यों कहते हैं ? और इस जीवन के मूल्य के बराबर का यह किरण-विसर्जन उन्होंने किस गुरतर अभिप्राय से किया है ?”

असंयत होकर उन्होंने लिफाफा खोल डाला। उसमें उनका एक विल था। उसमें बिना किसी शर्त के अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण को दान की थी। विल के साथ एक छोटा-सा पत्र था—पत्र त्रिभुवन के नाम था, उसमें उन्होंने लिखा था—पुत्र त्रिभुवन, तुम्हारा सम्पूर्ण ज्ञान, सौजन्य और पाण्डित्य तुम्हारा है, वह तुम्हारे जीवन निर्वाह को यथेष्ट है। और मेरी आजन्म उपाजित सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण की है।

बहुत दिन हुये, जब तुम दोनों बालक थे, मैंने और सर शादी-

लाल ने तुम्हें और किरण को वाग्बद्ध किया था । आज मैं दोनों को वाग्मुक्त करता हूँ । और तुम्हें तुम्हारा व्यक्तित्व, और किरण को अपनी सब सम्पदा देता हूँ । गुरुजन की इच्छाओं का कारण जानने की चेष्टा न करना, तथा मेरे इस दान और विभाजन की प्रतिष्ठा रखना । इससे तुम्हारा और किरण का भला होगा । उन्होंने सब बातों पर विचार करके सर ठाकुरदास का मन्तव्य और उनका विल सब पर प्रकट कर दिया ।

सुन कर किरण मिट्टी के समान जड़ हो गई । वह रोई नहीं, चिल्लाई नहीं, वह गुमसुम हो गई । उसकी आँखें पथरा गई । चेहरा पत्थर-सा भावहीन हो गया । लेंडी शादीलाल ने रोते रोते घर भर दिया । त्रिभुवनदास चुपचाप तीन दिन तक लाइब्रेरी में पड़े रहे । किसी से बोले-चाले तक नहीं । केवल सर शादीलाल धैर्यपूर्वक सब काम करते रहे ।

कार्य की समाप्ति पर एक दिन त्रिभुवनदास भार के तड़के ही सर शादीलाल के कमरे में जा पहुँचे । सर शादीलाल जरा देर से उठते थे, वे अभी शैया पर ही थे । इतनी जल्द त्रिभुवन को आया देखकर बोले—इतनी जल्दी उठ कर आने की क्या आवश्यकता थी ? तन्दुरुस्ती न खराब हो जायगी ! पर त्रिभुवन ने वह बात नहीं सुनी । दो कदम आगे बढ़कर उन्होंने सर शादीलाल के चरणों में मस्तक टेक दिया । उन्होंने कहा—‘पापा, अब मैं जाऊँगा, आप मुझे भूलियेगा नहीं ।’

सर शादीलाल ने घबरा कर कहा—“कहाँ जाओगे ? क्यों जाओगे ?”

“अभी ठीक नहीं कह सकता । व्यवस्था होने पर आपको सूचित कर दूँगा । ये सब चाभियाँ हैं लाइब्रेरी की । बड़ी सेफ में सब दस्ता-

वेजात और आवश्यक कागजात हैं, मैंने सब हिसाब ठीकठाक कर दिया है। आप किरण को एक बार सब समझा दीजियेगा।”

“किन्तु, किन्तु तुम्हारा अभिप्राय क्या है?”

“पिताजी की आज्ञा पालन करने से, आज मैं उनको खोकर भी सुखी हूँ पापा।”

बात सुनकर लेडी शादीलाल भी वहाँ आ गई। बातचीत की झनक किरण के कानों में भी पड़ी। वसीयत की बात जानने के बाद लज्जा और ग्लानि के कारण वह त्रिभुवन के सम्मुख नहीं आई थी, अब भी न आ सकी। धड़कते हृदय से त्रिभुवन की बातें द्वार में कान देकर सुनने लगी।

लेडी शादीलाल को देखकर सर शादीलाल ने कहा—

“सुनती हो, त्रिभुवन जाना चाहते हैं।” उनके स्वर में क्रोध था।

“कहाँ?” लेडी ने आश्चर्य और प्रश्नसूचक मुद्रा से दोनों की ओर बारी-बारी से देखा।

परन्तु त्रिभुवन नीचा सिर किये मौन खड़े रहे।

लेडी उनके पास पहुँच गई। उन्होंने कहा—

“कहो क्या बात है?”

“मुझे आप आशीर्वाद देकर विदा कीजिये”। त्रिभुवन ने झुक कर पैर छुआ।

“परन्तु तुम जा कहाँ रहे हो?”

“वह मैं सब ठीकठाक होने पर पत्र में लिखूँगा।” सर शादीलाल ने कहा—“समझ गया। सर ठाकुरदास के विल की बात है। परन्तु वह सब नहीं होने का।”

“क्यों नहीं होने का?” त्रिभुवन ने दृढ़ मुद्रा से कहा। “इस

समय तुम विचार की मुद्रा में नहीं हो । मैं जो कहता हूँ करो । जाकर अपने कमरे में बैठो । पागलपन मत करो ।’

परन्तु त्रिभुवन ने अधिक दृढ़ स्वर में कहा—

“पापा, मुझे जाना ही होगा ?”

“कैसे जाना होगा ? तुम समझते हो—किरण तुम्हारे पिता का दान स्वीकार कर लेगी ?”

“क्यों नहीं करेगी ? क्या वह पिताजी की अवहेलना करेगी ? लेडी शादीलाल ने कहा—“मान लो स्वीकार ही कर लिया, पर वह और तुम क्या दो हों ? बेटा, उसका तुम्हारा दोष क्या है ? फिर हमारे भी क्या और कोई है ?”

“परन्तु पिता का वचन तो पालन होना ही चाहिए । जो कठोर व्यवस्था उन्हें करनी पड़ी—जिससे उन्हें प्राणदान भी देना पड़ा—वह अकारण तो है नहीं पापा, आज उसे हम नहीं समझ पाते तो आगे समझेंगे—इसी से मैं...”

“क्या तुम किरण को त्यागने की सोच रहे हो ?”

त्रिभुवन के नेत्र दोलायमान हुए । उन्होंने अन्यत्र देखते हुए कहा—“पिताजी ने प्राण त्यागे, तो मैं क्या किरण को नहीं त्याग सकता ? किरण के सुख-सौभाग्य के लिए ?”

“तुम्हारे त्यागने से क्या किरण को सुख-सौभाग्य की प्राप्ति होगी ?”

“यही तो पिताजी ने कहा था ।”

“पर बेटा, वे भूल भी तो कर सकते हैं ? लेडी शादीलाल ने आँखों में आँसू भर कर कहा ।”

“यह असम्भव नहीं है माँ ! परन्तु जिस निर्णय को करने में उन्हें प्राण देना पड़ा, उसमें उन्होंने भूल नहीं की है ।”

सर शादीलाल ने कहा—“तो जल्दी क्या है ? फुरसत में सब बातों पर विचार कर लिया जायगा ?”

“नहीं पापा, यह विचार करने की बात ही नहीं है, पिताजी विचार करके ही व्यवस्था कर गए हैं ।”

“तो भी तुम्हारे जाने का क्या कारण है ? तुम यहीं रह सकते हो ।”

“रह नहीं सकता पापा, रहना चाहिए भी नहीं ।”

“क्यों नहीं ?” सर शादीलाल ने क्रोध की मुद्रा में कहा ।

“पापा, इस दास पर क्रोध मत कीजिए । आज मेरा हृदय प्रफुल्लित है, यह जान कर, कि किरण के सुख-सौभाग्य के लिए पापा ने जो कुछ किया है, मैं उसमें अनुगमन कर रहा हूँ, फिर पापा, यह सब किरण का ही तो है, यही तो पापा की और मेरी भी वासना थी ।”

“तुम कुछ नहीं समझते हो त्रिभुवन, किरण के साथ तुम अन्याय कर रहे हो ।”

“पापा, जीवन की निष्ठा, जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है । आप ऐसा मत कहिए, ऐसा ही होगा तो मैं अपने ऊपर अन्याय अत्याचार भले ही कर लूँ, पर किरण पर कैसे कर सकता हूँ ? फिर जब मेरे पूज्य पिता ने उसपर अपने को न्योछावर कर दिया है—किरण अब मेरी पूजा की वस्तु है पापा ! उसमें मैं पिता के प्यार और अपनी निष्ठा के दर्शन करता हूँ ।”

कमरे के उस ओर से सिसकारी सुनाई दी । त्रिभुवन ने सिर नीचा कर लिया । सर शादीलाल ने कहा—“त्रिभुवन, तुम नहीं जानते, किरण तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रहेगी बेटा । अच्छा यही सही, सब सम्पत्ति किरण ही की रहे । पर तुम यहीं रहो । हमें छोड़कर मत जाओ । हमारा भी एक तुम्ही सहारा हो ।”

“मुझे जाना होगा पापा । आप पूज्य पुरुष हैं, मायाग्रस्त मत हूजिए । हाँ, किरण के ब्याह में मैं जरूर आऊँगा ।” त्रिभुवन के सूखे होठों पर फीकी हँसी फैल चली ।

किरण के धड़ाम से गिरने का शब्द हुआ । लेडी और सर शादीलाल असंयत होकर उधर को लपके । त्रिभुवन स्थिर-अचल खड़े रहे, और फिर उधर से मुँह फेर कर कदम बढ़ाते हुए बाहर निकल आए । बाहर आकर उन्होंने रुक कर और पीछे फिर कर देखा भी नहीं । धीरे-धीरे वे कोठी के फाटक को पार करके सड़क पर आ खड़े हुए । पीछे आहट पाकर देखा, गोबर्धन आ रहा है । उन्होंने कहा—“गोबर्धन दादा, किरण की देख-भाल करना, उन लोगों को कोई असुविधा न हो ।”

“भैया, बिटिया रानी को एक बार देखोगे भी नहीं, एक बार भेंट भी नहीं करोगे ?”

“नहीं, दादा, यह उचित न होगा ।”

“बिटिया का सिर फट गया है, उसमें से खून निकल रहा है ।”

“तो दादा, तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? डाक्टर को फोन नहीं किया ? जाओ, जल्दी जाओ ।” और फिर वे एकाएक बहुत ही असंयत होकर सड़क पर लम्बे-लम्बे डग भरने लगे ।

परन्तु पीछे किसी के आने की आहट पाकर देखा—गोबर्धन पीछे-पीछे ही आ रहा है । उन्होंने कहा—“यह क्या दादा, मेरे पीछे क्यों आ रहे हो ?”

“इसके लिए तो सरकार ने रोका नहीं था भैया ।”

गोबर्धन के स्वर में स्पष्ट रोष था ।

“पर तुम समझते नहीं हो दादा । जाओ, घर जाओ; किरण को तुम्हारे बिना.....”

वे पूरा वाक्य नहीं कह सके । उनका स्वर काँप गया । आँखें भी गीली हो गई । पर वे रुके नहीं—चलते चले गए ।

गोवर्धन भी रुका नहीं, पीछे-पीछे चलता गया । कुछ दूर चलने पर रुक कर त्रिभुवनदास ने कहा—“दादा, मेरे पास रहने की हठ न करो ।”

“तो और मैं रहूँगा कहाँ भैया ? फिर, तुम्हीं दादा के बिना कैसे रहोगे ?”

“किन्तु किरण.....”

“तुम भैया, यदि बिटिया के बिना जी सकते हो; तो मैं भी जी सकता हूँ । और बिटिया तुम्हारे बिना जी सकती है तो दादा के बिना भी उसका काम चल जायगा । पर इस दादा का तो एक क्षण भी तुमसे दूर रहकर नहीं कट सकता । जब तुम घुटनों चलते थे, तभी से मैं तुम्हारे साथ परछाई के समान हूँ । अब परछाई को कैसे दूर करोगे भैया ?” गोवर्धन की सफेद मूछें आँसुओं से भीग गई । त्रिभुवन से अब कुछ कहते न बना । वे लम्बा-लम्बा डग बढ़ाते चल दिये । गोवर्धन ने पीछे दौड़ते-दौड़ते कहा—“भैया, एक बार लौट कर बिटिया से भेंट कर लो, ऐसे निष्ठुर न बनो ।”

परन्तु त्रिभुवन ने चलते-चलते कहा—

“नहीं ।”

और दोनों—पुरुष और छाया, नगर के नर-समुद्र में डूब गए ।



छांटे से घर में दो आदमियों की संक्षिप्त गृहस्थी कुछ अटपटी और विचित्र-सी थी। त्रिभुवनदास जन्म के सम्पन्न, योरोप में भ्रमण किया, वहीं शिक्षा पाए तथा सम्मान्य बैरिस्टर हुए। नगर के गण्यमान समाज में उनका परिचय तथा आदर था। परन्तु भाग्य-दोष कहिए या कर्तव्यनिष्ठा कहिए, जिससे प्रेरित हो उनके सदाशय पिता ने मृत्यु-पत्रिका में उन्हें अपनी करोड़ों की सम्पादा में से एक पाई भी नहीं दी। उन्हें निरीह अवस्था में, इसीसे इस छांटे से घर में चुपचाप अज्ञातवास करना पड़ा। उन्होंने किसी मित्र से भी कुछ सहायता न ली। न कोई चर्चा ही की। पिता के घर से वे केवल शरीर पर जो वस्त्र पहने थे, उसी को धारण करके चल दिए थे। गोवर्धन के पास भी कुछ न था, परन्तु उसी ने यह छोटी-सी खोली एक दरिद्र महल्ले में अपने एक मित्र की सहायता से प्राप्त कर ली। गोवर्धन का मित्र एक सेठ का जमादार था, किराया उगाहना तथा सेठ के घर किराए पर देना उसका काम था, उसीने गोवर्धन को पचीस रुपया माहवार पर यह खोली दे दी थी। यह एक छोटी-सी किन्तु साफ सुथरी कोठरी थी। मकान बहुत बड़ा था उसमें सैकड़ों छोटे-छोटे परिवार रहते थे। परन्तु सारे घर में ऐसी ही छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी थीं। उन्हीं में इन परिवारों का गुजर बसर होता है। इस उपन्यास के प्रारम्भ में जिन नरकीटों का वर्णन किया गया है उनसे इन खोलियों में रहने वाले बहुत उन्नत हैं। उन्हें पृथक कोठरी प्राप्त है, उसमें एक बिजली की बत्ती भी लगी है; कोठरी के पीछे के

भाग में एक खिड़की भी हवा आने-जाने के लिए है। बत्ती दस बजे बुझा दी जाती है, और पाखाना गुसलखाना सबका संयुक्त है, आवश्यकता होने पर पाखाने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रातः सायं तो लाइन लगानी पड़ती है। गुसलखाना खुला है। वहाँ स्त्रियाँ प्रायः हर समय धोबी घाट लगाए रहती हैं। सफाई की कमी है। शोरगुल, लड़ाई भगड़ा होता ही रहता है। सूर्य का प्रकाश नहीं है। पीछे की तङ्ग गली दुर्गन्धित भी है, तो भी वे सब असुविधाएँ कुछ नहीं हैं, इन दोनों घरबारों को अनायास ही खोली मिल गई है यह बड़े भाग्य की बात है।

त्रिभुवनदास के पास एक जड़ाऊ अँगूठी और एक सोने की घड़ी थी। दोनों वस्तु उसके मित्रों ने उपहार में दी थीं। गोवर्धन के पास डेढ़ सौ रुपया नकद, एक सोने की जञ्जीर और मृत पत्नी के तीन-चार चाँदी के गहने थे। उन सबको बेचबाच कर गोवर्धन ने साढ़े नौ सौ रुपया एकत्र कर लिया। डेढ़ सौ रुपयों में बिछौना कपड़ा, वर्तन, राशन आदि, जीवन निर्वाह के सब आवश्यक सामान जुटाकर गोवर्धन ने ८०० नकद त्रिभुवनदास के सामने धर दिये।

इतनी रकम देखकर त्रिभुवनदास के सूखे चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई। उन्होंने तो अपनी अँगूठी और घड़ी देकर ही गोवर्धन को उसी में गिरस्ती जुटाने को कहा था। उनका ख्याल था—मुश्किल से उन्हें दो तीन सौ रुपया मिलेगा। इतना रुपया नकद और आवश्यक सारी वस्तुएँ देखकर उन्होंने कहा—“दादा, इतना रुपया कहाँ पाया? क्या कर्जा तो नहीं लिया?”

गोवर्धन ने कहा—“भैया, कर्ज लेता तो क्या तुम मुझे जिन्दा छोड़ते? तुम्हें क्या मैं जानता नहीं हूँ। कुछ फालतू चीजें पड़ी थीं, वे सब बेच बाच दीं।”

त्रिभुवनदास ने और बात नहीं पूछी। गोवर्धन अपनी गिरस्ती

को व्यवस्थित करने में लग गए। और त्रिभुवनदास उनके साथ, उनके संकेत से इस प्रकार छोटा बड़ा काम करने लगे—जैसे सास के इशारे पर बहू काम करती है। सब वस्तु व्यवस्थित कर गोवर्धन ने भोजन बनाया। फिर उसने त्रिभुवन को भोजन कराकर स्वयं भोजन किया। और नए मकान में नए जीवन की पहिली रात उन्होंने शान्ति और सन्तोष से व्यतीत की।

रात ही को यह तय कर लिया गया था कि कल से कोर्ट में प्रेक्टिस शुरू की जायगी। त्रिभुवनदास प्रातः ही उठकर, नित्य कर्म से निपट कचहरी जाने को तैयार हो गये। गोवर्धन ने चाय तैयार कर दी। जब त्रिभुवनदास जाने लगे तो गोवर्धन ने उन्हें रोक कर माथे पर दही-रोरी का तिलक दिया, और मुँह में दो बताशे टूँस दिए। फिर आँखों में आँसू भरे, उनको उस समय तक देखता रहा जब तक कि वे आँखों की ओट न हो गए।

त्रिभुवनदास को प्रेक्टिस करने की अनुमति प्रथम ही प्राप्त हो गई थी। सर ठाकुरदास ने अपने मित्र और कानूनी सलाहकार तथा नगर के ख्यातनामा वकील त्रिलोकनाथ मित्र के साथ त्रिभुवन की प्रेक्टिस की व्यवस्था की थी। सो त्रिभुवन सीधे त्रिलोकनाथ मित्र के आफिस में आ पहुँचे। त्रिभुवन त्रिलोकनाथ को चाचाजी कह कर पुकारते थे। उन्होंने प्रेम से त्रिभुवन का स्वागत किया। सर ठाकुरदास की असामयिक मृत्यु पर बहुत-बहुत दुःख प्रदर्शित किया। और जब सकुचाते हुए उन्होंने कहा—“कि वे आज से प्रेक्टिस शुरू किया चाहते हैं, तो उन्होंने मुरब्बाना ढंग पर कहा—“इतनी जल्दी क्या थी, थोड़ा और आराम कर लेते?” परन्तु त्रिभुवन ने कहा—“नहीं, खाली बैठे मन नहीं लगता, काम में दिल बहल जायगा।

त्रिलोकनाथ ने कहा—“हाँ, यह तो ठीक है। तो तुम्हें यह कैसे देता हूँ।” उन्होंने एक फाइल उठाकर उनके आगे रख दी। और

कहा—“अखबारों में तुमने एडवोकेट जनरल श्री गोपालदास की हत्या का हाल पढ़ा ही होगा। उसी केस में सरकारी फीस पर तुम्हें हत्याकारिणी का डिफेन्स करना है।”

हत्याकारिणी के वकील होकर पहले पहल अदालत में जाने के विचार से उनका मन कैसा कुछ हो गया। फिर, हत्याकारिणी से उन्हें कुछ सहानुभूति भी न थी। उन्होंने कहा—“अभी आप मुझे कोई दूसरा केस देते तो अच्छा होता। हत्याकारिणी ने हत्या तो की है, वह हत्या के स्थलपर गिरफ्तार हुई है—उसने हत्या का अपराध स्वीकार कर लिया है, अब मैं क्या करूँगा?”

त्रिलोकनाथ ने कहा—“नहीं नहीं, तुम यही केस लड़ो। तुम जानते हो कि सारे शहर में इस हत्या की चर्चा है। उसने जाँ मुँह बन्द कर लिया है, इससे हत्या के रहस्य का पता नहीं चल रहा है, इससे नगर में और भी उत्सुकता है। हत्या करना उसने स्वीकार किया है अवश्य—पर कारण बताने से इन्कार किया है। इतने बड़े आदमी का खून एक औरत के द्वारा होना—तथा औरत का कारण बताने से इन्कार करना और इत्मीनान से फाँसी की सजा को आमंत्रित करना यह सब असाधारण है। पुलिस केस की असलियत का पता लगाने में सर्वथा असमर्थ रही है। अब तुम यदि अपनी प्रतिभा-खोज और जिरह से मामले का असली भेद उद्घाटन कर सको, खूनी ने किन अवस्थाओं में आत्म-विस्मृत एवं विवश होकर यह खून किया है, इसका पता लगा सको तो आसामी चाहे सजा पावे या छूट जाय—तुम्हारा नाम लोगों की नजर में चढ़ जायगा। तुम्हें अपनी कल्पना, गवेषणा और भाषण-शक्ति तथा चातुर्य के प्रदर्शन करने का यह स्वर्ण सुयोग है। सो तुम यह केस खूब तैयारी के साथ लड़ो। बीच-बीच में मैं मदद देता रहूँगा। यह भी हो सकता है कि इसी एक केस से तुम्हारी ख्याति चमक उठे।”

त्रिभुवनदास ने केस ले लिया। अदालत में हत्याकारिणी को देखकर उनका मन घृणा और विरक्ति से भर गया। उसके बिखरे हुए रूखे अधपके खिचड़ी बाल, गर्व-पूर्ण निर्भय अदालत में खड़े होकर पुलिस के रोकने पर भी सिगरेट पीना, अदालत की प्रत्येक बात को अवज्ञा से टाल देना, किसी भी बात का उत्तर न देना, यह सब विचित्र तो था, पर कुछ शुभ नहीं दीख रहा था। समाज को क्या ऐसे स्वेच्छाचारी खूनी व्यक्तियों की आवश्यकता है? व्यवस्था और शान्ति का फिर क्या होगा? कानून को इस प्रकार अपने हाथों में लेना, और उसपर यह उद्गण्ड प्रदर्शन, यह सब क्या क्षम्य है? फिर एक स्त्री? स्त्री के प्रति त्रिभुवनदास के बड़े कोमल भावुक विचार थे। उन्होंने दो ही स्त्रियों को हृदयङ्गम किया था, एक माँ को—जिन्हें उन्होंने अपने होश में कभी देखा नहीं—उनकी मूर्ति की पिता के साथ पूजा की। दूसरी किरण को, जो एक अनाघ्रात कुसुम था, जिसे स्पर्श करने के प्रथम ही उन्हें विसर्जन करना पड़ा। इन दो उच्च स्त्री तत्त्वों के प्रति पूज्य-पूजन की भावना ने उनके मन में स्त्री-मात्र के लिए पूजा का भाव उदय कर दिया था। अब इस खूनी दुर्दान्त स्त्री के घोर दुष्कृत का वे समर्थन करें तो किस प्रकार? क्या वह कोई असहाय कुसुम कोमल कलिका थी? जिस पर आक्रमण किया गया था, और जिसके प्रतिकार स्वरूप उसे नरहत्या जैसे जघन्य कार्य को करना पड़ा। या कि वह कोई सम्भ्रान्त कुलरमणी थी, जिसके प्रति अमानुषी अत्याचार किया गया था। वह तो एक जघन्य स्त्री है, वह नरकीटों के थूकने का एक ठीकरा है, यह तो पुलिस ने अनायास ही पता लगा लिया था। उसने न जाने किस दुरभिसंधि से आवेशित होकर यह दुष्कर्म किया है, ऐसी हालत में किसी भी रूप में उसका यह कर्म समर्थित, अनुमोदित नहीं हो सकता।

परन्तु उन्हें उसका समर्थन करना होगा। यह तो कहा ही नहीं

जा सकता कि वह खूनी नहीं है। वह खून के स्थल पर गिरफ्तार हुई है। यही नहीं, उसने नगर की सशस्त्र पुलिस का डट कर ट घण्टा मुकाबिला किया है। और अब भी उसकी आँखों में शील-संकोच और अनुपात की राई-रत्ती भी झलक नहीं है। वह सम्यता, शिष्टाचार और स्त्री जनोचित सभी भद्र व्यवहारों को जैसे अपने भ्रष्टाचार से दलित कर रही है। ऐसी हालत में अपराध की इस नग्न मूर्ति के इस दुष्कृत्य का समर्थन किस आधार पर किया जा सकता है ?

फिर भी वह वकील था। उसे अपना केस एक वकील की भाँति लड़ना था। वह आहिस्ता से अदालत में अपना वकालतनामा पेश करके चुप-चाप उसकी बगल में खड़ा हो गया। अदालत से उसने कहा—“मैं अपने को श्रीमती.....व्या नाम है इनका—इनकी ओर से उपस्थित करता हूँ।” स्त्री खिल-खिलाकर हँस पड़ी। उसने कहा—“मेरा नाम और मेरा काम दोनों सब जानते हैं। मैं ठीकरा हूँ। पर तुम्हें किसने मेरी ओर से वकालत करने का अधिकार दिया है ?”

त्रिभुवन ने धीरे से कहा—“मैं आपकी कानूनी सहायता के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हूँ।”

“परन्तु मुझे किसी कानूनी सहायता की आवश्यकता नहीं है !”

“फिर भी न्याय में कोई त्रुटि न रहे इसलिए आपकी ओर से एक वकील होना ही चाहिए !”

‘न्याय में मैं कोई त्रुटि न होने दूँगी। आप इत्मीनान रखिए। व्यर्थ अपना समय और दिमाग मत खपाइए। जाइये, दूसरा कोई मालदार मुवकिल ढूँढ़िए। मैं आपको फीस-वीस कुछ न दे सकूँगी।

“आपको फीस नहीं देनी पड़ेगी श्रीमतीजी !”

“मैं श्रीमती जी नहीं हूँ ! ठीकरा हूँ।” हत्याकारिणी ने जोर से पैर पटक कर क्रोधपूर्वक कहा।

त्रिभुवनदास ने अदालत से अँग्रेजी में प्रश्न किया—‘ क्या यह स्त्री पागल तो नहीं है ? इसकी डाक्टररी परीक्षा हो चुकी है ?’

“परन्तु अदालत के उत्तर देने से प्रथम ही हत्याकारिणी ने कहा—हाँ, हाँ, सब हो चुका है, मैं पागल नहीं हूँ भाई, व्यर्थ परेशान मत होओ !”

अदालत और त्रिभुवनदास दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा । दोनों को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि हत्याकारिणी अँग्रेजी भली-भाँति समझ लेती है ।

आवश्यक खानापुरी होने के बाद, मुकदमे की तारीख देकर बन्दिनी को जेल भेज दिया गया । त्रिभुवनदास स्वीकृत कर सीधे त्रिलोकनाथ मित्र के आफिस में जा पहुँचे । मित्र महाशय आराम कुर्सी पर अपने दोनों पैर फैलाए पड़े सिगार का धुआँ उड़ा रहे थे । उन्होंने त्रिभुवन को बैठने को कहकर, नौकर का चाय लाने का आदेश दिया । त्रिभुवन ने एक कुर्सी पर थकित भाव से बैठते हुए फाइल आहिस्ते से टेबुल पर रखते हुए कहा—“चाचाजी आप यह कैसे अपने किसी दूसरे जूनियर को दे दें ताँ अच्छा हो—मैं तो इसमें कुछ भी न कर सकूँगा ।”

“यह क्यों ?” मित्र महोदय ने दूसरा सिगार जलाते हुए कहा—

“मेरा खयाल है कि मैं इस औरत को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकूँगा !”

“दिक्रत क्या है ?”

“यह तो कहाँ ही नहीं जा सकता कि उसने खून नहीं किया । यद्यपि कोई आँखों-देखा गवाह नहीं है, पर परिस्थिति उसके प्रतिकूल है । उसे अपराध स्वीकार है, ऐसी अवस्था में मुझे उसके इस जघन्य कार्य-का समर्थन ही करना होगा, यह मैं किसी भी हालत में न कर सकूँगा !”

“क्यों नहीं कर सकोगे बेटे !”

“चाचाजी उसे देखते ही उसके प्रति घृणा, विरक्ति और विरोधी भावना ही मन में उदय होती है। वह स्त्री जाति का एक विकृत कृत्स्न रूप है, उसमें उस कुकर्म के लिए तनिक भी पश्चात्ताप और खेद नहीं है।”

“त्रिभुवनदास, तुम जिनके प्रति घृणा, विरक्ति और तिरस्कार की भावना रखो तथा जिनका आचरण तुम्हें न रुचे, उनके प्रति यदि तुम सदय न रह सको तो तुम सफल वकील नहीं बन सकते। पहिली बात तो यह कि तुम एक अपराधिनी के वकील हो। तुम्हें—अपराध क्या है, इस पर विचार नहीं करना है, यह काम न्यायपति का है। तुम्हें यह देखना है कि अपराधिनी ने अपराध क्यों किया है। वह पेशेवर अपराधी है ? क्या उसने और भी कोई खून किया है ? अथवा उसके विरुद्ध पुलिस की डायरी में कहीं कोई अपराध हल्का या भारी दर्ज है ?”

“यह नहीं है, परन्तु वह एक पतितकर्मा स्त्री है, उसका पेशा घृणित है।”

“पर उसका पेशा अपराध तो नहीं है ? तुम वकील हो—और उसके ही वकील हो तो तुम्हें उसके समर्थन में सब से बड़ा प्रमाण तो यही प्राप्त है कि उसके जीवन में किसी अपराध का कैसा भी छोटा बड़ा कोई सम्पर्क नहीं है।”

“यह तो है।”

“अब उसके पेशे की बात लो—देखो भैया, तुम वकील हो—इसी से सब बातों की गहराई में तुम्हें जाना चाहिए। वह जो खराब पेशा करती है, चाहे भी जिस कारण से वह यह पेशा करने पर विवश हुई, पर तुम यह स्वीकार करोगे कि पेशे की मर्यादा रखने को बहुधा उसे अपनी विरक्ति, घृणा, मानापमान को जय करना पड़ता

है। पसन्द नापसन्द का कुछ विचार बिना ही किए, उसे जिस तिस को शरीर अर्पण करना पड़ता है, इस काम में उसे तनिक भी रीति-प्रीति होगी, यह तुम विश्वास भी नहीं कर सकते ?”

“यह तो सच है।”

“अच्छा अब तुम यह सोचो कि यह कितना कठिन है। अभी तुमने देखा कि तुम्हारा मन उसके प्रति घृणा, विरक्ति और हीन भावों से भरपूर है, इसीसे उसका तनिक-सा भला करना भी तुमसे बन पड़ना कठिन हो रहा है, और वह घृणा-विरक्ति और विद्रोह सब ही आँचल में बाँध कर जन्म भर अपने को अर्पित करती आई है सो यह क्या उसका भारी चरित्र नहीं है ? इस संयम, धैर्य और सहन-शक्ति की सामर्थ्य का भी कहीं ओर-छोर है ?”

त्रिभुवनदास चुपचाप त्रिलोक बाबू की बातें सुनते रहे। सिंगार के दो-तीन कश लेकर उन्होंने कहा—“और एक बात है। क्या तुमने नहीं देखा कि उसे मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है, यह तो तुम देख चुके कि उसे अपने उस जघन्य काम के प्रति तनिक भी अनुताप की भावना नहीं है, परन्तु उसने क्या उसके दण्ड से भाग निकलने की तनिक भी चेष्टा की है ? क्या उसने तुमसे सहायता माँगी ?”

“नहीं, वह तो वकील करना ही नहीं चाहती।”

“तो कहाँ, किस भावना ने उसे ऐसा साहस, तेज और दृढ़ता दी है ! वह किस उद्देश्य से साहसपूर्वक मृत्यु का वरण कर रही है ? किस शक्ति से सम्पन्न होकर उसने एक सुरक्षित-सम्भ्रान्त पुरुष को मार डाला है ? पुलिस का दर्प से सामना किया है ? और अब उसने होठ सी लिए हैं, वह किस महत्वपूर्ण ध्येय के आधार पर अचल पर्वत की भाँति निस्पन्द खड़ी है ?”

मित्र महोदय के भाषण का त्रिभुवनदास पर भारी प्रभाव पड़ा।

चाय आ गई। अपने हाथ से चाय का प्याला बनाकर प्रेमपूर्वक त्रिभुवन के आगे सरकाते हुए त्रिलोक बाबू ने मेज की दर्राज से एक कागज निकाल कर त्रिभुवनदास के आगे रख कर कहा—“इन शब्दों पर तो जरा विचार करो। केवल येही शब्द उसने मुँह से निकाल कर अपने होंठ-सी लिए हैं।”

त्रिभुवनदास ने उन शब्दों पर दृष्टि डाली। उसने पुलिस में केवल यही कहा था कि—पूज्य-पूजन के लिये यह काम करना पड़ा। त्रिभुवनदास ने पहले भी ये वाक्य पत्रों में पढ़े थे, पर ध्यान नहीं दिया था, अब उन्हें अकस्मात् एक बात याद आ गई। उसी रात; जिस दिन यह दुर्घटना हुई थी; तथा उनके घर पर जब ग्रान्ड पार्टी दी जा रही थी—तब पार्टी की समाप्ति पर सर ठाकुरदास ने अपनी पत्नी—त्रिभुवनदास की माता के सम्मुख खड़े होकर कहा था—“पुत्र, अब तुम पूज्य पूजन करो, ये तुम्हारी माँ हैं, जो तुम्हें मेरी गोद में डाल कर अपना सूना आँचल लेकर चली गई। तब से अब तक मैंने तुम्हें माँ और बाप दोनों ही की भाँति पाला—अब तुम समर्थ हुए, इस घर की—इस कुटुम्ब की यह कुल देवी हैं, अपने हाथों मैंने अब से बीस वर्ष पूर्व इनकी स्थापना की थी। स्वीकार करता हूँ पूजा की थी, चाहूँ तो कह सकता हूँ, पूजा करता रहा हूँ, मेरे पुत्र, यह तुम्हारे विदग्ध हृदय पिता की गवोक्ति नहीं, कातरोक्ति है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि अब मेरा सारा संयम-धैर्य और तप खर्च हो चुका, पूज्यपूजन का ‘सामर्थ्य’ अब मुझमें नहीं रही दीखती है। मेरे बेटे, आज से तुम इस काम का भार अपने ऊपर लो। आओ, आज मेरे सामने पूज्यपूजन करो और वचन दो—कभी इस काम में गफलत न करोगे। कभी नहीं करोगे। मैं अब नहीं देख पाऊँगा, पुत्र, परन्तु यह मेरी वसीयत है, तुम्हारे लिये।”

सुगन्धित मोमवत्तियाँ पिघल-पिघल कर बह रही थीं, उसी भाँति

सर ठाकुरदास की आँखें भी बह रही थीं। जैसी काँपती हुई उन बत्तियों की लौ थी, वैसी ही सर ठाकुरदास की कथित बाणी थी।

इस समय त्रिभुवनदास की आँखों के सम्मुख वह दृश्य घूम गया। पिता के शब्द उनके कान में भँकृत हो उठे—एक अव्यक्त-अज्ञात-अतर्कित भय—आशंका—वेदना उनके रोम-रोम घर कर गई। वे सोचने लगे—सम्भवतः उस रात एक ही समय में, एक ही नगर के दो भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न परिस्थिति के भिन्न-भिन्न व्यक्ति पूज्यपूजन में व्यस्त थे। और यह कैसे आश्चर्य की बात है कि दोनों ही यह पूज्य पूजन—हर तरह एक दूसरे के विपरीत हाँते हुए भी प्राणों के मूल्य के थे। अन्तर इतना ही था, एक गत प्राण हो चुका था, और एक प्राण विसर्जन के लिए आमन्त्रित था।

क्या इन दोनों घटनाओं में कहीं कुछ समता है? अन्तरिक्ष के उस छोर पर कहीं भी क्या ये दोनों समानान्तर सूत्र मिलते हैं? यही सब सोचते-सोचते त्रिभुवन दास का सारा शरीर काँपने लगा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे अर्भा मूर्छित हाँकर गिर पड़ेंगे।

त्रिलोक बाबू ने पहिले तो इस भाव-परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया, पर एकाएक त्रिभुवनदास की यह हालत देख उन्होंने हाथ का सिगार फेंक दिया। और लपक कर त्रिभुवन दास को अपने अंक में भरते हुए कहा—“त्रिभुवन, बेटे, क्या तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है?”

त्रिभुवनदास ने अपने को समहाला, कहा—“नहीं चाचाजी, मैं ठीक हूँ। परन्तु मैं इस स्त्री से जेल में मिलना चाहता हूँ।”

“अवश्य मिलो। उसके हृदय की ग्रन्थि खोल डालो, और तुम देखोगे—केस बड़ा मनोरञ्जन है, उसमें कोई महत्वपूर्ण रहस्य छिपा है।”

त्रिभुवनदास ने सूखते कण्ठ से कहा—“चाचाजी, वह बहुत अच्छी तरह अंग्रेजी समझ और बोल भी सकती है।

“तब तो निश्चय ही वह औरत तथा उसका यह हत्याकांड किसी भारी सूत्र से सम्बन्धित है ।”

त्रिभुवनदास लड़खड़ाते हुए उठ खड़े हुए । उन्होंने कहा—
“अच्छी बात है चाचाजी, यह केस मैं करूँगा ।” मित्र महाशय मुस्करा कर सिगार सुलगाने लगे ।

घर लौट कर त्रिभुवनदास का वैकल्य बहुत बढ़ गया । स्पष्ट कोई धारणा उनके मन में न थी, पर एक अस्पष्ट अशुभ अनिर्वचनीय वेदना से उनका तन मन भर गया । लोग कहते हैं, पुत्र पिता की ही आत्मा का अंश है, कदाचित् इसीसे त्रिभुवन के तनमन में जो वैकल्य भर गया था—वह, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे इसी वैकल्य को उसके पिता गत बीस वर्ष से हृदय में धारण किये हुए थे । जैसे पिता का ही वैकल्य उन्हें वरासत में मिला और वह उनकी आत्मा ही से उत्पन्न हुआ ।

गोवर्धन ने इसका सही कारण नहीं समझा । उसने सोचा—इस हीनावस्था को सह न सकने ही से, इस समय ये आकर ऐसे सुस्त हो गये हैं । उसने चाय और जलपान की ठाठदार तैयारी की थी—वह अपनी वेदना भुलाकर उसी में अपने प्रिय युवक स्वामी की वेदना को भी भुला देना चाहता था । उसने जलपान की सामग्री त्रिभुवनदास के सामने रखते हुए कहा—“एक प्याला चाय पी लो भैया, एक ही दिन में मुँह कैसा सूख गया है । परन्तु चिन्ता की बात नहीं है, बड़े सरकार ने भी हाथ पाँव से यह सम्पदा खड़ी की थी—तुम भी करोगे ।”

परन्तु त्रिभुवनदास ने गोवर्धन की बात नहीं सुनी ! चाय और जलपान की सामग्री आँख के आगे रखी जाने पर भी उन्होंने नहीं देखी । उन्होंने व्यग्र—कातर और भीत स्वर से सूखे तालू और सूखे होठों पर जीभ का पुचारा फेरते हुए कहा—“अब क्या होगा दादा ।”

वह स्वर सुनते ही गोवर्धन को काठ मार गया । उसने कहा—

“क्या बात है भैया, कहो क्या कोई नई दिक्कत आई है ?” त्रिभुवन ने अपने को संयत किया । फिर धीरे से कहा—“कुछ नहीं, और वे सारा ही भय—शोक और ददे एक ओर को ढकेल कर चुपचाप चाय पीने लगे । प्रकट में ऐसा मालूम होता था, जैसे वे बड़े चाव से चाय पी रहे हैं, पर वास्तव में त्रिभुवनदास जैसे वहाँ थे ही नहीं । एक शब्द भी मुँह से वे नहीं निकाल रहे थे, यद्यपि मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठ रहा था । वे नाश्ता इस तरह गले से उतार रहे थे, जैसे खाना खा रहे हों, और रेल छूटी जा रही हो ।

गोवर्धन ने भी कुछ नहीं कहा । नाश्ते के बाद वह भोजन की खट-पट में लगा । त्रिभुवनदास चारपाई पर पड़े रहे । युवक स्वामी की किसी गहरी वेदना का उसने अनुमान तो किया, परन्तु वह सान्त्वना नहीं दे सका । किसी गम्भीर कारण से वह चार की भाँति उनके पास से खसक गया ।

त्रिभुवनदास के शरीर में बिच्छु-भिड़-और सर्प दंश करने लगे । वे किसी भी प्रकार बिछोने पर सोने में अक्षम हो उठकर धरती पर लोट गये । प्रत्येक श्वास में वे अपने मन को बहकाते थे—यह सब कुछ नहीं है वे क्यों इतने परेशान हैं । पर दूसरे ही क्षण आप ही हतबुद्धि की भाँति उनके मुँह से निकल जाता था—अब क्या होगा ? पर तीसरे ही क्षण वे चौकने होकर इधर-उधर देखते । किसी ने देखा तो नहीं, किसी ने सुना तो नहीं । उनकी दशा एक उन्मत्त की सी हो रही थी । उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वे कोई चोरी करके या कोई भारी कुकर्म कर के आए हैं और अब उन्हें जीवित रहना—श्वास लेना या किसी को मुँह दिखाना भी दुर्लभ हो रहा है ।

एकाएक उन्हें स्मरण हो आया । माता की मूर्ति का उन्हें पूजन करना है । उन्होंने नित्य पूज्य-पूजन का पिता को वचन दिया था । पिता ने उनपर नित्य पूज्य-पूजन की वसीयत की थी । उन्होंने अब

चारों ओर आँख उठाकर देखा । यह तो उनका वह आलीशान सुख-साधन-सम्पन्न महल नहीं है, यहाँ उनकी पूजनीया माता की वह मूर्ति भी नहीं है । अब वे किसका पूजन करें । दुर्बुद्धि से वे माँ की मूर्ति को त्याग कर पूज्य-पूजन से विमुख हो यहाँ भाग आए हैं । अब क्या किया जाय ? उन्होंने उस छोटे से कमरे की गंदी दीवार को देखा, वे दौड़कर दोनों हाथ फैलाकर दीवार से चिपक गए । उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—माँ माँ ! तुम कहाँ हो ? बढ़ते हुए अंधकार में उन्होंने देखा, दीवार पर वही भव्य मूर्ति बनी हुई है । वैसी ही शालीनता से उसकी भव्य और दिव्य मुख-मुद्रायें हैं । सौन्दर्य-आभा और पवित्रता उस मुख-मुद्रा से फूटी पड़ रही है । वह मूर्ति सुगन्धित मोमवस्तियों के मृदु प्रकाश से आलोकित है । उसके सन्मुख उनके पिता सर ठाकुरदास खड़े हँस रहे हैं । उन्होंने हाथ फैला कर माँ-माँ कहा, पर उस मूर्ति को निकट से देखने को आगे बढ़े तो देखा मूर्ति माँ की नहीं है—उस भयानक घृणित नर हत्याकारिणी की है । बाल बिखरे, गंदे और झाड़ हो रहे हैं । आगे के दाँत टूटे हैं, शरीर पर चिथड़े हैं—हाथों में हथकड़ियाँ हैं, वह हँस रही है, सिगरेट का धुआँ उड़ा रही है । लज्जा और विनय वहाँ नहीं है, बीभत्स का एक नज़ा चित्र है । उन्होंने चिल्लाकर दोनों हाथ दीवार पर दे मारे । उन्होंने कहा—दूर हो-दूर हो, हत्यारी, फापिनी, दुराचारिणी, कुलटा, ठीकरा, दुर, दुर-दुर ।

उनका सिर घूमने लगा—उन्होंने देखा और सुना—वह मूर्ति हथकड़ियों से जकड़े दोनों हाथ नचाकर हा-हा करके हँसने लगी । उन्होंने सुना वह व्यंगपूर्ण रीति पर कह रही है, हा-हा-हा-हा—ठीकरा-ठीकरा !! देखो रे लोगों ठीकरे ने यह नया शृङ्गार किया है । आओ ऐ नरकीटों, देखो-देखो ।

पृथ्वी और आकाश एक दूसरे में घुस गये । समुद्रों का जल आग

बन गया । नदियाँ सर्पिणी की भाँति फुसकारने लगीं । दिशाएँ जलने लगीं । पर्वत टुकड़े हो होकर बिखरने लगे । आकाश बीच से फट गया और अन्धकार का समुद्र उसमें होकर पृथ्वी को बहा ले चला । त्रिभुवनदास ने बहुत हाथ पैर मारे—बहुत चिल्लाये, पर बच न सके । इस अन्धसमुद्र में वे डूब गये, डूब गये ।

गोवर्धन जब भोजन का थाल लेकर कमरे में आया तो उसने देखा—त्रिभुवनदास धरती पर औंधे मुँह पड़े हुए हैं । उसने थाल एक ओर रखकर उन्हें उठाकर चारपाई पर लिटाया । उनके शरीर की धूल मिट्टी साफ की । मुँह पर पानी के छींटे दिये, फिर कान के पास मुँह ले जाकर जोर-जोर से पुकारा—भैया, भैया ।

थोड़ा यत्न करने पर त्रिभुवनदास की आँख खुल गई । उन्होंने आँखें फाड़-फाड़ कर पहले कमरे के चारों ओर देखा—फिर उनकी दृष्टि गोवर्धन के चेहरे पर अटक गई । उन्होंने दोनों हाथों से कसकर गोवर्धन की कलाई पकड़ कर कहा—“तुमने देखा था दादा—वह यहाँ भी आई थी ।”

“कोन आई थी—भैया ।”

“तुमने देखा नहीं ? वही, वह खूनी औरत थी ।”

“परन्तु भैया, यहाँ कोई नहीं आया !”

“वह माँ की उस तस्वीर को ले गई है दादा, वहाँ-वहाँ”—
उन्होंने एक ओर ऊँगली से संकेत किया ।

परन्तु वहाँ कुछ नहीं था ।

गोवर्धन ने कहा—“थोड़ा भोजन कर लो भैया ! फिर सोने से तबियत ठीक हो जायगी ।” परन्तु त्रिभुवनदास ने यह बात नहीं सुनी । वे कुछ गम्भीर बात सोच रहे थे, अब वे करवट बदल कर सो गये । थोड़ी देर में उन्हें नींद आ गई । गोवर्धन ने सोचा—यह

अच्छा है। और वह भोजन एक ओर रखकर, चारपाई के निकट एक कमबल बिछा आसन लगाकर बैठ गया।

रात गम्भीर होती गई। त्रिभुवन गहरी नींद सो गये। उनकी ओर सन्तोष की दृष्टि से देखता हुआ गोवर्धन तमाम रात चारपाई के पास बैठा रहा।



८

इस प्रकार एकाएक त्रिभुवनदास के गृह त्याग की कल्पना सर शादी लाल ने नहीं की थी। वे अभी तक भी बात की गहराई को समझ न पाये थे। जब वे जाने को दृढ़ प्रतिज्ञा हुए और किरण ने देखा कि उनके जाने का मूल कारण यह है कि सर ठाकुरदास अपनी सब सम्पत्ति उसी को दे गये हैं, अतः पिता की वसीयत को मान्य करके त्रिभुवनदास किरण के साथ ही उस सम्पत्ति को भी त्याग करके जा रहे हैं तो किरण का मन क्षोभ आत्म-नलानि और वेदना से हाहाकार कर उठा, और वह असंयत होकर भूमि पर गिरकर मूर्छित हो गई।

जब सर शादीलाल और किरण की माता उसके उपचार में लगे तो त्रिभुवनदास बिना ही किरण से मिले—बिना ही उसे देखे, उस अवस्था में सब माया-मोह त्याग, निर्मम हो चल खड़े हुए, तब उनका यह अतर्कित निष्ठुर व्यवहार, लेडी और सर शादीलाल को आपाद आहत कर गया। लेडी शादीलाल तो इस द्विगुण आघात को न सहकर शैया में गिरकर हाय-हाय करने लगीं। परन्तु सर

शादीलाल ने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया । वे पत्नी और पुत्री दोनों की सुश्रुषा में जुट गये । उन्होंने बहुत दुनिया देखी थी, बड़े-बड़े आँधी मेह पार किए थे, अतः वे सर ठाकुरदास की वेदना तथा त्रिभुवनदास के व्यवहार के कारणों पर विचार करने लगे । उन्होंने सर ठाकुरदास की तीन विचार-धाराओं का विश्लेषण किया । एक यह कि उन्होंने अपने को तथा सर शादीलाल को परस्पर विवाह वचन से मुक्त किया । सर शादीलाल ने इसका यह अर्थ लगाया कि कोई ऐसी भारी दुर्घटना हुई है, जिसके प्रकट होने पर उनकी मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा खतरे में पड़ जायगी । उस समय शायद सर शादीलाल उनके कुल में अपनी कन्या न देना चाहें—और वाग्दान के संकोच से दिक्रत में पड़ें । इसलिये उन्होंने आत्माभिमान की उच्च भावना से वाग् बन्धन से सर शादीलाल को मुक्त कर दिया ।

परन्तु यदि किरण तथा सर शादीलाल और उनकी पत्नी—उस दुर्घटना के प्रकट हो जाने पर भी यह सम्बन्ध कायम रखें, किसी अपवाद की परवाह न करें—तथा किरण सब बाधाओं तथा अपवादों की परवाह न कर त्रिभुवन ही से विवाह करना चाहें तो उन्होंने अपने वक्तव्य के दूसरे अंश में उन्हें स्वेच्छा से जहाँ चाहे सम्बन्ध करने की स्वतन्त्रता दी । इसका यह स्पष्ट अर्थ था कि वाग्बन्धन तो नहीं रहा, परन्तु यदि वे सब चाहें तो त्रिभुवन से ही किरण का विवाह हो सकता है । इसका उन्हें निषेध नहीं है । अभिप्राय यह कि सर ठाकुरदास ने विवाह का निषेध नहीं किया, केवल वाग्दान से सर शादीलाल को और अपने को मुक्त किया ।

परन्तु यदि किरण और त्रिभुवनदास में विवाह न हो तो—इससे किरण को दुःख होगा । सर शादीलाल और उनकी पत्नी को क्षोभ होगा । यदि सत्य ही कोई ऐसी दुर्घटना हुई है तो उन्हें अब तक यह बात छिपानी और बात को इतना आगे बढ़ने देना नहीं चाहिए

था। यह उनका अपराध तो है। इससे सर शादीलाल को तथा उनके परिवार को सन्ताप तो होगा। मान मर्यादा में भी भ्रंश खड़ा हो सकता है, इसलिए उन्होंने दण्ड देना स्वीकार किया। दण्ड का माप दो आधारों पर रक्खा गया—एक अपने हृदय का प्रेम जो किरण के प्रति था—दूसरा हृदय की ग्लानि जो किसी बात को छिपाए रखने के कारण थी। इसीसे उन्होंने अपना सर्वस्व किरण को दे दिया। पुत्र को एक पाई भी न दी। वे जानते थे, पुत्र भी किरण को बहुत प्यार करता है, तथा पिता का यह दान किरण के विसर्जन के उसके दुःख को कम ही करेगा। इसीसे उन्होंने यह निश्चय किया।

सर शादीलाल उन तीनों धाराओं पर विचार करते-करते अब इस तथ्य पर पहुँचे कि कोई भारी दुर्घटना हुई अवश्य है। तथा हाल ही के दिनों में उससे सम्बन्धित कुछ ऐसी बात हुई है, कि सर ठाकुरदास को ऐसी कड़ी व्यवस्था करनी पड़ी तथा लज्जा और क्षोभ से प्राण भी त्यागने पड़े।

तब वह घटना क्या हो सकती है ! घर में दो ही ऐसे व्यक्ति हैं जो इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाल सकते हैं। एक त्रिभुवनदास स्वयं दूसरे गोवर्धन परन्तु, क्या त्रिभुवनदास इस सम्बन्ध में कुछ जानते हैं ? यह तो सम्भव प्रतीत नहीं होता। यदि वे कुछ जानते होते तो वे इस प्रकार किरण को धोखे में नहीं रख सकते थे। अब भी उन्होंने इतना ही जान पाया है जितना मैंने। इसीसे वे किरण को एक बार बिना देखे ही चले गए। उसे देखने का, उससे बिदा मागने का उन्हें साहस न हुआ।

गोवर्धन सम्भव है कुछ जानता हो। वह सर ठाकुरदास का विश्वस्त सहचर था। पर वह प्राण रहते कुछ बतायेगा नहीं। फिर अब तो वह भी त्रिभुवन के ही साथ है।

परन्तु कुछ चिन्ता नहीं। मैं रहस्य का उद्घाटन कर लूँगा। वह

कुछ भी हो—मैं सर ठाकुरदास के खानदान की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दूँगा। परिणाम चाहे जो हो। अपवाद चाहे जैसा भयानक हो, वह मुझे सर ठाकुरदास से जुदा नहीं कर सकता। मैं सर ठाकुरदास से छोटा नहीं बनूँगा। उन्होंने मेरी किरण पर अपना सर्वस्व प्राण, और पुत्र की भी बलि दी है। मैं सर ठाकुरदास की प्रतिष्ठा पर अपनी जान, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति सब न्योछावर कर दूँगा। चाहे भी जो कुछ हो, किरण का व्याह मैं त्रिभुवनदास से ही करूँगा। और यदि किरण ने इसका विरोध किया तो मैं अपने सिर में गोली मार कर आत्मघात कर लूँगा। यही मेरा दृढ़ निश्चय है।

सन्ध्या होते-होते लेडी शादीलाल और किरण दोनों ही स्वस्थ हुई। डाक्टर प्राणनाथ ने बहुत दौड़-धूप की। सर शादीलाल ने पुत्री और पत्नी को कुछ भोजन कराया—और तसल्ली देकर कहा—‘चिन्ता की कोई बात नहीं है। सब ठीक हो जायगा।’

किरण ने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला था। वह रोती भी नहीं थी। वह गुमसुम बिछौने पर पड़ी थी। त्रिभुवन पर उसे मान, अभिमान, क्रोध सब कुछ था—वह अनजान बालिका विश्व के घात-प्रतिघातों से अज्ञात थी। वह नहीं जानती थी कि अनुकूल मन के विपरीत आचरण कैसे होते हैं। उसके दुःख को उसके क्रोध और मान ने दबोच लिया था।

जब उसने सुना कि वह बेहोश होकर गिर गई, उसका सिर फट गया—ता भी वे चले गए। आए नहीं, रुके नहीं, वह जैसे उनसे प्रत्यक्ष बातें करने लगी। ऐसे हो तुम, निर्मम और कठोर ! अच्छा—पापा ने मेरे नाम विल किया—सो क्या मैं ले लूँगी ? तुम्हारे बिना वह सब धन सम्पत्ति मैं क्या करूँगी भला ? अच्छा मान लो वे सब कुछ मुझे दे ही गए, तो मैं तुम्हें देती हूँ, तुम भी तो मुझे देते हो। मेरा दिया लेने में तुम्हें इतना घमण्ड ? उसकी आँखों में पानी

छलछला आया । फूले हुए ओठ फड़कने लगे । अच्छा-अच्छा—ऐसे हों तुम । निर्मम-कठोर पत्थर !”

वह बहुत-सी बात सोचती । और अन्त में मछली की भाँति तड़प कर रह जाती ।

लेडी शादीलाल बहुत नाराज थीं । वे बहुत-सी ऊलजलूल बकवाद कर रही थीं । परन्तु सर शादीलाल ने उन्हें रोकना ठीक नहीं समझा । उन्होंने कहा—सब गर्द गुबार बाहर निकल जाने दो । स्त्री का दिल है, तूफान आने से सब हो जायगा ।

सर शादीलाल ने कई आदमी दौड़ाकर त्रिभुवनदास के नए घर का पता लगा लिया । सन्ध्या होने पर छड़ी लेकर घूमने के बहाने वह घर स्वयं भी देख आए । लौट कर हँसते-हँसते कहा—“विट्रो रानी, पता लग गया । त्रिभुवन पास ही एक घर किराये लेकर रहने लगा है । बाह्यात बात है, लड़कपन है । अच्छा किरण, कल वहीं चल कर हम लोग चाय पीयेंगे । देखूँगा, मुहम्मद के पास पहाड़ नहीं जायगा तो मुहम्मद पहाड़ के पास जायगा । वे हँसते जाते थे और इस प्रकार की बातें करते जाते थे । उनका अभिप्राय पत्नी और पुत्री को भुलावा देने का था । पर सत्य बात तो यह थी कि तीनों की मनोदशा तीन भिन्न दिशाओं में थी । स्वयं सर शादीलाल भी, जो ऊपर से ऐसे लापरवाह बन रहे थे, भीतर बहुत उद्विग्न हो रहे थे । वास्तव में सर ठाकुरदास के आचरण ने उन्हें हिला दिया था ।

रात भर त्रिभुवनदास को अच्छी नींद आई। प्रातःकाल वे जब जगे तो उनका मन स्थिर था। उन्होंने मन ही मन अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया था। उन्होंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और गोवर्धन से कहा—“मुझे एक जरूरी काम से अभी कहीं जाना है, और मैं शाम को जरा देर से लौटूँगा।” उन्होंने चाय की प्रतीक्षा नहीं की। उसके लिये गोवर्धन का अनुरोध भी नहीं माना।

ज्योंही उन्होंने द्वार से बाहर निकलने का उपक्रम किया—किरण ने द्वार में प्रवेश किया, एक प्रकार से दोनों टकरा गए। किरण को देखते ही त्रिभुवनदास एकदम ऐसे घबराए, जैसे बाघ मिल गया हो। वे इस तरह छिटक कर जाने लगे जैसे किरण को जानते ही नहीं, परन्तु किरण ने उन्हें रोक कर कहा—“मुझे तुमसे कुछ कहना है।” त्रिभुवन ने कहा—“मुझे काम है, मैं जाता हूँ।”

“केवल एक बात सुन लो।”

“नहीं।”

और वे झपटते हुए आगे बढ़ गए, किरण के पीछे ही सर शादीलाल थे। उनकी ओर भी उन्होंने आँख उठाकर नहीं देखा। वे तीर की भाँति एकदम चले गए।

परन्तु किरण का सूखा और मुरझाया हुआ मुँह उन्होंने उसी एक क्षण में अच्छी तरह देख लिया। उसकी वह अनुनय भरी वेदनापूर्ण दृष्टि, तप्तशलाक की भाँति उनकी आँखों में घुस गई। जैसे लता सूख कर एकदम श्रीहीन हो जाती है। इस प्रकार किरण को

श्रीहीन देख उनका हृदय हाहाकार करने लगा । सर शादीलाल की पर्वत के समान अचल और स्थिर मूर्ति का भी वे इस प्रकार तिरस्कार करके चले आए । उनकी ओर आँखें उठाकर उन्होंने देखा तक नहीं । अभिवादन भी नहीं किया ।

इन सब तूफानी विचारों ने उनके मस्तिष्क को गर्मा दिया । उन्होंने असंयत होकर बड़ी जोर से अपनी छाती में एक घूँसा मारा । उनका मन मचल गया । मन ने कहा—चल—चल—लौट चल, अपने आँसुओं से किरण के चरण कमलों को पल्लवित कर, उसकी मुरझाई आशा लता को अपने प्यार से सिंचित कर, उस निर्दोष कुसुम कलिका पर दया कर । परन्तु कहीं से दैत्य के समान एक विरोधी विचार आया । उसने कहा—नहीं नहीं । सीधा चला चल, किरण की ओर तैने यदि आँखें उठाकर देखा तो तेरे वंश-कुल, पिता और तेरी सारी मर्यादा ही डूब जायगी । किरण को देखते ही आँखें फूट जायगी । उसे छूते ही तू भस्म हो जायगा ।

विचारों की तीव्रता ने उनके चरणों की गति भी तेज कर दी । और वे पाँव प्यादे ही जेल की ओर बढ़े चले । राह में जाते-आते नर-नारी, मोटर-गाड़ी, ट्राम सब उन्हें काले-पीले-लाल धब्बे से दिखाई दे रहे थे । वे नहीं जान रहे थे कि वे भी एक मनुष्य हैं और वे क्या कर रहे हैं । हाँ गन्तव्य स्थल की स्मृति उनके मस्तिष्क में उपस्थित थी ।

इस प्रकार ढकेल कर उपेक्षा से चले जाने का आघात किरण नहीं सह सकी । उसका सिर घूमने लगा और वह वहीं किवाड़ का सहारा लेकर क्षण भर खड़ी रही । सर शादीलाल इस बार भी धैर्य च्युत नहीं हुए, उन्होंने किरण के दोनों कन्धे पकड़ कर कहा—‘चलो, भीतर चलो बेटी !’ इसी समय गोवर्धन ने आकर उसे सहारा दिया । घर में कुर्सी नहीं थी । अतः किरण को और सर शादीलाल

को चारपाई पर बैठा कर गोवर्धन उनके चरणों में बैठ कर रोने लगा । उसने बहुत सहा था । अब इस समय किरण की दुर्दशा देख कर करुणा और दुःख से उसकी छाती फट गई । उसके धीरज का बाँध एकवारगी ही टूट गया । उसने रो-रो कर त्रिभुवनदास को गत रात और दिन की सब कहानी सुना दी । अदालत में इनपर क्या बीती थी, यह वह नहीं जानता था । परन्तु जो उसने देखा वह सब उसने कहा और फिर किरण के पैर छू कर कहा—‘रानी विटो, भैया पर तुम नाराज मत होना । उन्हें बड़ा दुःख है, वे होश में नहीं हैं । विपत का पहाड़ उन पर टूटा है । इस समय तो हम सब को मिल कर जैसे बने इस विपता से उन्हें उबार लेना है ।’

गोवर्धन की बात सुनकर सर शादीलाल ने कहा—“तुम ठीक कहते हो गोवर्धन ! इस समय त्रिभुवन की स्थिति एक रोगी के समान है । पर चिन्ता मत करो । सब ठीक हो जायगा ।”

किरण को गोवर्धन की बातों से कुछ तसल्ली हुई । उसके विचार की धारा बदली । क्रोध और क्षोभ के स्थान पर उसके मन में त्रिभुवन के प्रति करुणा और दुःख का उदय हुआ । उसने देखा, सचमुच ही इस समय उन्हें सहारा देकर उबार लेने की आवश्यकता है । उसे अपने गुस्से और मान पर तिरस्कार उपजा । इतनी देर बाद उसने चारों तरफ आँख उठाकर उस गन्दे और मनहूस कमरे को देखा । उस साधारण चारपाई को, उस नई एक दिन की गृहस्थी को । और फिर उसने यह भी सुना कि वे चाय पीकर भी नहीं गए हैं, कहाँ गए हैं, यह भी कह नहीं गए हैं । रात को देर से लौटेंगे इतनी सूचना भर वे दे गए हैं । इन तमाम बातों से उसने उनकी रात की मनोदशा का तारतम्य मिलाया तो सब बात समझ कर भय, आशंका और दुःख से उसका रोम-रोम विकल हो गया । उसने अब प्रत्यक्ष देखा—निश्चय ही त्रिभुवनदास किसी घोर कष्ट में हैं, जिससे उन्हें उबारना होगा ।

उसके निर्मल चित्त में दृढ़ता का उदय हुआ। प्रेम के तरल अमल धवल प्रकाश ने उसकी आत्मा को प्रकाशमान कर दिया। दृढ़ निश्चय और कठोर तपस्या की स्थिर भावना—स्थित पन्न की मुद्रा—उसके सूखे-मुर्झाए चेहरे पर अंकित हो गई। उसने कहा—
दादा, हमें उनको सहारा देना होगा। मैं तुम्हारे साथ हूँ। पापा, आप जाइए, माँ को देखिये। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है—अभी मैं यहाँ हूँ। रात को उनके आने पर उन्हें खिला-पिलाकर दादा के संग आ जाऊँगी।”

सर शादीलाल को पुत्री की यह कर्तव्य-निष्ठा पसन्द आई। उन्होंने खुश होकर कहा—“ठीक है। यहीं रहो बेटी, मैं ही सन्ध्या को आकर तुम्हें ले जाऊँगा।

“नहीं पापा, अब यह मेरा काम है। आप इस बीच में मत पड़िए। न जाने किस मनोदशा में—किस गहरे संकोच में पड़कर वे आपके सम्मुख आना नहीं चाहते—देखा नहीं आपने—जाती बार आपकी ओर उन्होंने देखा भी नहीं, प्रणाम भी नहीं किया !”

“सो कुछ बात नहीं है बेटी। मैं जानता हूँ वह दुःखी हैं।”

“नहीं पापा, आप अब इस मामले से दूर ही रहिए। यह मेरा मामला है, मैं उनसे निपट लूँगी। आप माताजी की देख-भाल कीजिए।”

गोवर्धन ने कहा—“यह तो ठीक है बिटिया, पर तुम इस गन्दे घर में दिन भर कैसे उनकी प्रतीक्षा करती बैठी रहोगी। यह तो ठीक नहीं होगा।”

“बहुत ठीक होगा, पापा अब आप जाइए”। सर शादीलाल ने बेटी की अचल आत्मभरिता का अभिनन्दन किया और वे वहाँ से चल दिए।

अब किरण ने उस छोटे से घर की छोटी-सी गृहस्थी को गोवर्धन

की सहायता और परामर्श से सुसज्जित करना प्रारम्भ किया । सारा कमरा स्वच्छ साफ करके, सब सामग्री सजा कर वह एकबार गोबर्धन के साथ बाजार गई । कुछ आवश्यक सामान खरीदा । एक आराम कुर्सी भी खरीदी । वह जानती थी कि वे उसके रुपये से खरीदी कोई वस्तु स्वीकार नहीं करेंगे, सो गोबर्धन के पास जो रुपये थे, उन्हीं से सब चीजें खरीद कीं—खरीदती बार एक-एक पाई का किफायत के विचार से उन्होंने दूकानदारों से हुज्जत की ।

घर सज गया । उसकी काया पलट हो गई । कमरे की बिजली की टिमटिमाती मनहूस बत्ती को हटाकर एक तेज रोशनी का बल्ब भी बदल दिया गया । लिखने पढ़ने के लिए एक डेक्स भी लगा दिया गया । सन्ध्या होने से पूर्व ही उसने रसोई का उपक्रम किया । बहुत मना करने पर भी किरण ने अनभ्यस्त हाथों से रसोई बनाई । और बहुत अनुनय-विनय करने पर भी किरण ने भोजन नहीं किया । सब कार्य से निवृत्त हो वह निराहार वाला त्रिभुवनदास के आगमन की प्रतीक्षा में बैठ गई । जैसे कुलवधू व्रत-उपवास के बाद चन्द्रोदय की प्रतीक्षा में अर्घ्य लिए बैठती है ।



१०

जेल में जाकर त्रिभुवनदास ने हत्याकारिणी से मुलाकात की । हत्याकारिणी उससे मिलकर प्रसन्न नहीं हुई । उसने क्रुद्ध होकर कहा—‘तुम कौन हो ? क्यों आए हो ? मुझे वकील की क्या आवश्यकता है ? तथा मुझे कुछ कहना भी नहीं है ।’

परन्तु त्रिभुवनदास ने उसे समझाया कि वकील उसका सहायक है। उससे सहानुभूति रखता है। वह न्याय का सहायक भी है, और अपराध का विश्लेषक भी है। अपराध मस्तिष्क की विकृत अवस्था में होता है। मस्तिष्क की इस विकृति के अनेक रूप हैं। अनेक विपरीत क्रियाओं में—उन्हीं के भावावेश में, अच्छे से अच्छे सौम्य पुरुष भी अपराध कर बैठते हैं। इसी से अपराध की गुरुता, अपराध के परिणाम या उसकी प्रतिक्रिया पर आधारित नहीं होती। उसके कारण पर आधारित होती है। फिर आपने जो संक्षिप्त बयान पुलिस में दिया है वह रहस्य-पूर्ण है। उसका तो यह स्पष्ट ही अर्थ है कि आपने यह काम किसी अच्छे भाव से प्रेरित होकर किया है। इसलिये मैं आपके पास आया हूँ कि आप मुझे हृदय की सब सच्ची सच्ची बात बता दें। और फिर मैं देखूँ कि मैं आपकी कहाँ तक सहायता कर सकता हूँ। आप मुझ पर विश्वास रखें कि अपनी शक्ति भर मैं आपके लिये कुछ भी उठा न रखूँगा।”

तरुण वकील के मुख से ऐसी विचार वाणी सुनकर हत्याकारिणी का क्रोध शमन हो गया। वह बड़े ध्यान से उस सुन्दर युवक को देखती रही। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि में एक स्निग्ध भाव उत्पन्न हो गया। चेहरे पर मार्दव की रेखाएँ अंकित हो उठीं। उसने मन्द स्वर में कहा—

“तुम कौन हो भाई?”

“मेरा नाम त्रिभुवनदास है। मैं बैरिस्टर हूँ और यह मेरा पहिला ही केस है। मैं चाहता हूँ इसमें मुझे सफलता प्राप्त हो।”

नाम सुनकर हत्याकारिणी सिर से पैर तक काँप गई। जैसे शीत काल में दाँत से दाँत बजने लगते हैं उसी भाँति उसके दाँत बजने लगे। त्रिभुवनदास ने उसके इस भाव परिवर्तन को लक्ष्य किया तो—परन्तु उसका अभिप्राय कुछ भी नहीं समझा। ऐसे भयानक अपराधियों

में विविध मनोविकार उत्पन्न हो जाते हैं। उन्होंने अपना वक्तव्य आगे बढ़ाया। उन्होंने कहा—“आपने जो पुलिस में यह बयान दिया है कि—पूज्य पूजन के लिए आपको यह काम करना पड़ा, सो इसका क्या अभिप्राय है ?” परन्तु हत्याकारिणी ने उनकी बात जैसे सुनी ही नहीं। वह न जाने क्या-क्या सोच रही थी। अब उसने जैसे नींद से जाग कर कहा—

“तुम भैया, किनके पुत्र हो ?” उसकी वाणी आर्द्र, धीमी और स्वर कम्पित था। यह न अपराधिनी की वाणी थी, न आसामी की थी। कोई भी मुक्किल अपने वकील से ऐसी भाषा में बात नहीं कह सकता। यदि तरुण बैरिस्टर अपराधिनी की मनोदशा पर अधिक ध्यान देता तो—वह उसकी मनोदशा से परिचित हो जाता। परन्तु त्रिभुवनदास इस समय कुछ और ही सोच विचार में पड़े थे। उन्होंने कहा—“मैं सर ठाकुरदास का पुत्र हूँ। मेरे पिता बम्बई के लार्ड मेयर थे। शायद आपने उनका नाम सुना हो।”

यह नाम सुनकर हत्याकारिणी की आँखें पथरा गईं। वह जैसे मूर्छित होने लगी हो। परन्तु उसने एक झटका देकर अपने को सावधान किया। परन्तु उसका सारा अंग पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगा, तथा वाणी तुतला गई।

बैरिस्टर ने कहा—“आपकी तबियत ठीक नहीं है। आप तनिक लेट जाइए।”

परन्तु स्त्री ने थोड़ी उत्तेजित भाषा में लड़खड़ाती जवान से कहा—“अब मैं जाती हूँ,” और वह उठ खड़ी हुई।

परन्तु त्रिभुवनदास ने उसे पकड़ कर कुर्सी पर बैठाया। वह मिट्टी के ढेर की भाँति कुर्सी पर गिर गई। त्रिभुवनदास ने कहा—“आप क्या अपने वकील पर भी विश्वास नहीं करती !” परन्तु उसने होठ सी लिए। एक शब्द भी उसने उच्चारण नहीं किया।

त्रिभुवनदास ने कहा—“यह भी हो सकता है कि उस पुरुष ने—जिसकी आपने हत्या की है—आपका कभी कोई अनिष्ट किया हो। यह भी सम्भव हो सकता है आपके जीवन को उसने कभी नष्ट किया हो। और अब, जब आपको उसकी हत्या करनी पड़ी, वह आपके सम्मुख कोई बड़ी बाधा बनकर आ खड़ा हुआ हों ? और उसे अपनी राह से हटाना आपके लिए एक अनिवार्य काम हो गया हो। यह भी हो सकता है कि आपका कोई प्रिय व्यक्ति हो—और उसके अनिष्ट की आशंका से आपने उसे मार डाला हो। अथवा उसीने आप पर आक्रमण किया हो और आपने आत्मरक्षा के प्रयत्न में उसकी हत्या कर डाली हो। बहरहाल.....”

तरुण बैरिस्टर एक के बाद दूसरी कल्पना-धारा उपस्थित करता गया। अपने विचारों में वह इतना उलझ गया कि उसे यह भी ज्ञान न रहा कि जिसे लक्ष्य करके वह यह सब कल्पना-चित्र बना रहा है वह किस अवस्था में है। अब जो उसने आँख उठा कर देखा तो अपराधिनी स्त्री बिल्कुल मूर्छित अवस्था में कुर्सी पर पड़ी थी। उसका सिर एक ओर को लुढ़क गया था। पहले उसने यह समझ कर कि वह सो गई है, जगाने का उपक्रम किया। पर जब उसने देखा कि वह मूर्छिता है, तो उसने सहायता के लिये जेलर को बुलाया।

जेलर ने आकर मुलाकात खत्म कर दी। हत्याकारिणी तुरन्त अस्पताल भेज दी गई। और त्रिभुवनदास एक अजीब-सा बोझ हृदय पर लिये धीरे-धीरे जेल से बाहर आए।

इस समय दो पहर हो गया था। परस्पर विरोधी विचार-धाराएँ उनके मस्तिष्क में चक्कर लगा रही थीं। एक अस्पष्ट भय और अशान्ति का वातावरण उनके शरीर के भीतर-बाहर उत्पन्न हो गया था और वह ऐसा अनुभव कर रहे थे कि उनका मस्तिष्क कुछ निर्णय

नहीं कर पा रहा है। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई बहुत ही दूषित-सी भावना उसके शरीर और आत्मा में प्रविष्ट हो रही है। इस अपराधिनी स्त्री के प्रति उनके मन में कुछ विचित्र भाव उत्पन्न हो रहे थे। अपराध और कुत्सा दोनों ही उन्हें आकर्षित कर सकते हैं यह वह नहीं जानते थे। किसी अदृष्ट शक्ति के द्वारा खींचे जाकर उनका मन उस हत्याकारिणी की ओर प्रवाहित हो रहा था। रह-रहकर कोई अस्पष्ट-सी बात उनके मन में उदय होती—और विलीन हो जाती थी। इसी अस्त-व्यस्त अवस्था में वे त्रिलोकनाथ मित्र के आफिस में जा पहुँचे।

कचहरी की आज छुट्टी थी। त्रिलोकनाथ बाबू एक भारी केस के कागजों में उलझे थे। परन्तु त्रिभुवनदास के पहुँचते ही उन्होंने सब काम रोक दिया। आँख का चश्मा हटा कर बोले—“कहो, कहाँ से आ रहे हो?”

“मैं जेल गया था।”

“मुलाकात हुई?”

“हुई।”

“कुछ पता चला?”

“कह नहीं सकता, परन्तु उसने बताया कुछ नहीं।”

“तब?”

“मुलाकात के दस मिनिटों में उसके शरीर और मन में जो परिवर्तन हुए वे विचित्र थे। पहिले वह देखते ही उत्तेजित हुई। फिर वह मिट्टी के ढेर की भाँति पड़ी रही। उसका अंग जूड़ी चढ़े हुए पुरुष की भाँति बेबस था। और अन्त में जब मैं उससे कुछ जानने की चेष्टा कर रहा था—वह मूर्छित हो गई। सम्भवतः उसने मेरी कोई बात सुनी ही नहीं।”

“क्या उसने तुमसे बात ही नहीं की?”

“उसने मेरा परिचय पूछा । परन्तु उसका टोन अद्भुत था । यदि इसे उन्मादावस्था नहीं कहा जा सकता तो फिर वह बड़ा ही कोमल, दयार्द्र वात्सल्य भाव था । उससे न केवल मैं ही प्रभावित हुआ, वह स्वयं भी द्रवित हो गई । और इसके बाद ही वह मूर्छित हो गई ।”

मित्र महाशय बड़ी देर तक त्रिभुवनदास के चेहरे को ध्यान से देखते रहे । फिर उन्होंने गम्भीर मुद्रा से कहा—“त्रिभुवनदास, तुम्हें एक बार फिर उससे मिलना होगा । बल्कि मेरा यह कहना है, तुम्हें बारम्बार मिलना चाहिए । और चाहे भी जैसी अवस्था होने पर निरुद्धेग होकर, उसके मन की गूढ़ बात बाहर करनी चाहिए ।”

“मेरा भी यही विचार है ।”

“यह ठीक है । तो अब तुम इस मुकदमे के आवश्यक नोट्स तैयार कर लो । और तुम्हारी कल्पना इस सम्बन्ध में घटना की जो-जो रूप रेखाएँ बनावें—उन्हें लिख लो । यह बड़ा ही अद्भुत केस है त्रिभुवनदास, इसपर पूरा परिश्रम कर डालना चाहिए ।”

त्रिभुवनदास ने स्वीकार किया । वे डेस्क पर काम करने आ बैठे । लिखते-लिखते सारा दिन व्यतीत हो गया । और जब वे काम खत्म कर डेस्क से उठे तो—सन्ध्या हो गई थी । उन्होंने कहा—“चाचाजी, मेरे मनमें एक शङ्का उठ रही है । पर समझ में नहीं आता है—कैसे व्यक्त करूँ—वह इतनी भयङ्कर बात है कि कहना तो एक ओर रहा—मैं उसकी स्मृति से भी काँप उठता हूँ ।”

त्रिलोकचन्द्र बड़े भारी वकील थे । मनोविज्ञान और मानवचरित्र के बड़े पारखी थे । केस के सम्बन्ध में वे स्वयं भी एक विचित्र सन्देह में पड़े थे । परन्तु अभी वे इस मामले में त्रिभुवनदास से बात करना नहीं चाहते थे । उन्होंने कहा—“अपराध की भीतरी बातें ऐसी ही पेचीली होती हैं । परन्तु मेरी तुम्हें यह राय है कि अभी से किसी भी कल्पना को मन में घर मत करने दो—जितनी बातें जानी जा सकती

हैं जान लो । तब हम दोनों मिलकर सब बातों पर विचार-विनिमय कर लेंगे तथा सत्य को भी प्रकट कर लेंगे ।”

त्रिभुवनदास ने और बात नहीं की । वे धीरे धीरे घर की ओर चले ।

अपेक्षित समय से पहिले ही उन्हें आते देख गोवर्धन प्रसन्न हो गया । घर के वातावरण में असाधारण परिवर्तन था । उस परिवर्तन को देखकर उन्होंने सापेक्ष दृष्टि से गोवर्धन को देखा । गोवर्धन मूर्खों ही में मुस्कुरा रहा था । इसी समय किरण ने जलपान की थाली लेकर प्रवेश किया—उसने बिल्कुल निरुद्धेग भाव से कहा—‘पहिले जलपान कर लो ।’ उसने थाली मेज पर रख दी । कुर्सी तनिक पीछे खींचकर, नेत्रों ही से उसपर बैठने का अनुरोध-सी करती हुई वह खड़ी रही ।

सुबह त्रिभुवन उसका तथा सर शादीलाल का निष्ठुर अपमान कर गए थे । वह उन्हें अब याद हो आया । इस समय किरण—वह सब भूलकर इस प्रकार जलपान ले आई थी, जैसे वह वर्षों से यही काम नित्य करती रही है । त्रिभुवन ने एक क्षण भर को आँख उठा कर उसके सूखे मुँह की ओर देखा, फिर घबरा कर कुर्सी पर बैठ गये । और चुपचाप जलपान करने लगे । गोवर्धन यह देखकर प्रसन्नता से हँसने लगा ।

जलपान के बाद उन्होंने वस्त्र बदले । इस बीच उन्होंने किरण से सामना करने के लिये अपने मन को भी मजबूत कर लिया । अब उन्होंने कहा—“किरण, सुबह मैं जरा जल्दी में था । लेकिन—लेकिन पापा...”

किरण ने कहा—“पापा आए थे, वे चले गये, माँ की तबियत ठीक नहीं है, मैंने उन्हें भेज दिया ।”

“तो तुम्हें भी जाना चाहिए था किरण, माँ की तबियत...”

किरण ने बीच ही में बात काट कर कहा—

“अभी चली जाती हूँ मैं । परन्तु तुम भोजन कर लो । और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही भोजन का संरजाम जुटाने रसोई की ओर चली गई । त्रिभुवन जो कहना चाहते थे, वह न कह सके । अपनी विमूढ़ता को छिपाने के लिये वे चुपचाप गोवर्धन की ओर देखने लगे । गोवर्धन ने साहस पाकर कहा—“भैया, बिटिया रानी ने पानी की एक बूँद भी मुँह में नहीं दी है, तुम कुछ खा तो लो, मैं उसे भी कुछ खिलाऊँ । दिन भर उसने घर को ठीक-ठाक किया है । यह कुर्सी वह तुम्हारे लिये खरीद लाई हैं ।”

त्रिभुवन ने कहा—“क्या तुमने कहा था उससे ।”

“नहीं भैया ।”—फिर उसने डरते-डरते कहा—“किन्तु रुपया तो मैंने ही दिया था ।”

इसपर कुछ आश्वस्त होकर त्रिभुवनदास चुपचाप सोचने लगे । किरण ने भोजन का थाल लाकर सामने रख दिया । और त्रिभुवनदास बिना एक शब्द बोले भोजन करने लगे । किरण चुपचाप उनके पास खड़ी रही ।

एकाएक भोजन करते-करते वे उठ खड़े हुए । उन्होंने कहा—“किरण, अब तुम जाओ । बस !”

किरण ने आग्रह नहीं किया । वह चुपचाप वहाँ से हट गई । उसने गोवर्धन से कहा—“दादा, अब तुम मुझे घर पहुँचा आओ” और वह बिना ही प्रतीक्षा किए चल दी !

त्रिभुवनदास का मन छटपटाने लगा । उनका रोम-रोम कह रहा था कि—किरण, तुम कल की भूखी प्यासी हो—ठहरो, कुछ खालो । पर उनके होंठ बन्द थे ।

किरण द्वार की ओर चल दी ! गोवर्धन ने एक बार त्रिभुवनदास की ओर देखा—वे नीचा सिर किए खड़े थे । वह भी धीरे से किरण के पीछे द्वार से बाहर हो गया ।

मिभुवनदास चुपचाप हताश भाव से कुर्सी पर गिर गए ।

??

इस समय किरण का जाना उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे—उनके शरीर की प्रधान नसें जगह-जगह काट दी गई हों और उनमें से भर-भर कर रक्त बह रहा हो । इससे एक ऐसा अवसाद उनके शरीर और मन में उत्पन्न हो गया कि जैसे वे हाथ-पाँव ही नहीं हिला सकते और अभी उनका प्राण जा रहा है । जिस कुर्सी पर वे गिर से गये थे—उसी पर वे उसी भाँति बड़ी देर तक ढेर हुए पड़े रहे । उनका मन जैसे एक गहरी मूर्छा में डूबता चला गया ।

परन्तु ज्यों-ज्यों उनके मन ने चेतना लाभ की—उन्हें किरण के अभाव का ज्ञान अधिकाधिक स्पर्श होने लगा । इसका परिणाम यह हुआ कि वे वियोग की आग में सुलगने लगे । जिसका, अपने अब तक के जीवन में उन्हें कभी स्पर्श भी न हुआ था । वह वेदना उनके रोम-रोम में भर गई—और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा जैसे अभी उनके अंग-प्रत्यंग फट जाँयें और उनमें से वह वेदना फूट कर बह निकलेगी । देखते ही देखते उनकी आँखें गीली हो गई, और फिर आँसुओं की अविरल धारा उनसे बहने लगी । उनके अब तक के तरुण जीवन में प्यार की पीड़ा के ये प्रथम ही आँसू थे । इन आँसुओं के साथ उनका साहस, धैर्य और कर्तव्य सब बहकर शरीर से बाहर जाने लगा । अब केवल किरण ही की अमूर्त मूर्ति उनकी रक्त-विन्दुओं में भर गई । उन्होंने असंयत होकर खूब जोर से चिल्लाकर पुकारा—“किरण !”

और इसके बाद पागल की तरह वे दोनों हाथ फैलाकर किरण-किरण पुकारते हुए कमरे में चारों ओर—चक्कर लगाने लगे। कभी वे कमरे की सूनी दीवारों को, कभी बिछोने को, कभी उस छोटी टेबुल को और कभी कमरे के फर्श को वे अङ्क में भर-भर कर किरण-किरण चिछाने लगे। जैसे उन्हें उन सभी वस्तुओं में किरण ही किरण दाख रही हो।

आँसू आते, रुक जाते, बहने लगते सूख जाते। आहत पशु की भाँति आर्तनाद करते हुए, जाते हुए प्राणों की वेदना से छटपटाते हुए त्रिभुवनदास किरण को जैसे भी सम्भव हो—अपने में आत्मसात करते हुए—से कमरे में चक्कर काट रहे थे। इस समय न उन्हें मर्यादा का ज्ञान था, न अपना। किरण नहीं है, किरण की उन्हें आवश्यकता है। किरण चाहिए, सारे विश्व में एक किरण ही की उन्हें कमी है, यही वे अनुभव कर रहे थे।

जब गोबर्धन ने कमरे में प्रवेश किया तब वे अपना सम्पूर्ण आत्मगौरव खोकर उससे लिपट कर फूट-फूटकर रोने लगे। गोबर्धन उनके इस भाव का यथार्थ नहीं समझ पाया। फिर भी वह अपने तरुण स्वामी का यह कातर क्रन्दन न सह पाकर, स्वयं भी रोने लगा।

परन्तु इतना होने पर भी त्रिभुवनदास उस मृत्यु सहचर से पीड़ा की कोई बात कह न सके। गोबर्धन ने उन्हें बिछोने पर लिटाया और वे दोनों असहाय एकाकी प्राणी बड़ी देर तक चुपचाप जीवित विश्व के गर्भ में निर्जीव की भाँति पड़े रहे। रात गम्भीर होती गई और संसार नीरव होता गया। रात्रि के गहन अन्धकार में सुखद नींद में सोते हुआ की उष्ण प्रश्वासों तथा दुखित जनों की आह घूमने फिरने लगी।

महाकाल की गति अबाध है। जैसे प्रत्येक रात्रि बीतती है, वह भी बीत गई। सोने से त्रिभुवनदास का जी कुछ हल्का हो गया।

गोवर्धन उदास भाव से चाय-पानी की व्यवस्था करने लगा । इसी समय किरण वहाँ आ उपस्थित हुई । सर शादीलाल के साथ वह आई थी । पर उसने मामले में किसी का कुछ सहारा न लेकर अपने ही बल-बूते पर निर्भर रहना चाहती थी । वह बुद्धिमती स्त्री मुस्तैदी से अपने ही साथ युद्ध करने में जुट गई थी ।

किरण की पदध्वनि सुनते ही त्रिभुवन का अन्तःकरण आनन्द से भर गया । उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पारिजात सौरभ से उनका हृदय परिपूर्ण हो गया है । उनका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा । परन्तु वे किरण की ओर देखने का भी साहस न कर सके । चुपचाप बिस्तर पर पड़े रहे ।

परन्तु किरण ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया । वह सीधे गोवर्धन के पास जाकर चाय बनाने में उनका हाथ बटाने बैठ गई । जलपान की व्यवस्था पर उसने दृष्टि डाली और फिर त्रिभुवन के निकट जाकर कहा—“क्या तबियत खराब है ?”

“नहीं अच्छा हूँ ।”

‘फिर उठते क्यों नहीं ? इतनी देर तक तो कभी नहीं सोते थे ।’
उसने अपना शीतल कोमल हाथ उनके मस्तक पर रखा ।

उस सुख-स्पर्श से त्रिभुवन के प्राण हरे हो गये । आनन्द का जैसे स्रोत बह चला । उनकी इच्छा हुई कि वह सुखद मृदु हाथ पकड़ कर धड़कते हृदय पर रख लें—पर इतना साहस वे न कर सके ।

किरण ने कहा—“उठिए, चाय तैयार है”

त्रिभुवनदास ने कुछ उत्तर नहीं दिया । वे उठकर नित्य कर्म से निपटने चले गये । किरण ने चाय और जलपान व्यवस्था से सजा दिया ।

त्रिभुवन जब चाय पीने बैठे तब साहस करके उन्होंने कहा—
‘तुम भी आओ किरण ।’

उनकी वाणी कम्पित और आर्द्र थी। स्वर टूटते से थे। हाथ काँप रहे थे, सात्विक भावों से उनका प्रत्येक रोम ओत-प्रोत था।

परन्तु किरण प्रसन्न थी। उसने हँस कर कहा—‘आपके घर में कुल जमा एक ही प्याला और एक ही कुर्सी है। इसलिये आप पीजिये, आपके वाद मेरी बारी आयगी।’

इस पर त्रिभुवनदास अत्यन्त लज्जित होकर कुर्सी से एकदम उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—‘मुझे—मुझे माफ करना किरण, मैं महा असभ्य जंगली हो गया हूँ, बैठो तुम।’

परन्तु गोवर्धन ने कठिनाई को किसी भाँति हल कर दिया। वह एक बक्स खींच लाया। उसपर उसने विस्तर से चादर उठा कर तह करके बिछा दी। साथ ही एक गिलास में चाय और जलपान की सामग्री लाकर मेज पर रखते हुए कहा—‘बैठो बिटिया, आज मैं तुम्हारे लिये बहुत बढ़िया कुर्सी खरीद कर लाऊँगा।’

किरण हँस कर बक्स पर बैठ गई। परन्तु त्रिभुवनदास ने उठा कर उसे कुर्सी पर बैठाया और अपना प्याला उसके आगे सरका कर स्निग्ध स्वर से कहा—‘पिआ किरण’

और जब किरण ने प्यार भरी चितवन उनपर फेंकते हुए प्याले पर अपनी चंपक कली के समान उँगलियाँ डाली तो वह त्रिभुवन की उँगलियों से छू गई। त्रिभुवन को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे बिजली का तार छू गया हो। उन्होंने किरण के आनन्द-पुलकित चेहरे की ओर देखना चाहा—पर देख न सके—कुछ कहना चाहा—किन्तु कह न सके। वे चुपचाप चाय पीते रहे। परन्तु जैसे अब बिना कुछ कहे सुने—बिना बाले चाले—उनका पेट फट जायगा—वे पागल हो जायँगे ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। किरण भी बोली नहीं। उसका हृदय आनन्द से भरपूर था, वह चाय नहीं पी रही थी, प्याले से खेल

रही थी, उसका मन उत्फुल्ल था और वह खूब जोर से हँसना चाह रही थी ।

परन्तु त्रिभुवनदास ने कुछ और ही ढंग पर बातचीत प्रारम्भ की । उन्होंने कहा—“किरण, अब तुम घर जाओ । तुम्हारा रोज-रोज इस तरह यहाँ आना ठीक नहीं है, न होगा मैं वहाँ हो आया करूँगा ।”

“क्या आप मुझसे इतना ऊब गये हैं ?”

उसने प्रेम और लालसा से परिपूर्ण बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर ये शब्द कहे ।

त्रिभुवनदास की आँखें नीचे झुक गई । उनसे कुछ भी उत्तर नहीं देते बना ।

प्रातःकालीन वायु का उन्मादक भौंका-सा आकर उनकी आँखों में मद बखेर गया । किरण ने कहा—

“अच्छा, आपका मैंने कोई अपराध किया होगा तो आप मुझे जो उचित समझें दण्ड दे सकते हैं, पर माँ ने आपका क्या बिगाड़ा है । आप जानते हैं, वे पलंग से उठी नहीं हैं, और आपके नाम की रट लगा रही हैं ।”

त्रिभुवनदास ने घबरा कर कहा—“तो किरण तुम्हें उनके पास रहना चाहिए ।”

“और आपको ? आपको उन्हें एक बार देखना भी नहीं चाहिये ?”

“मैं, मैं” उन्होंने घबराई दृष्टि से चारों ओर देख कर कहा—
“मैं आऊँगा !”

“क्या जरूरत है इतना कष्ट करने की, वे आपकी माँ तो हैं नहीं—आपकी माँ होती तो...”

परन्तु किरण की बात यहीं रुक गई । जैसे एकाएक फोड़े पर

चोट पड़ने से मनुष्य चीत्कार कर उठता है, उसी प्रकार चीत्कार करके त्रिभुवन ने खड़े होकर कहा—“किरण”

किरण सहम कर जड़ हो गई। उसका मुँह एकदम सफेद हो गया।

त्रिभुवनदास लज्जित होकर बैठ गए। कुछ देर दोनों चुप रहे—फिर एकाएक उन्होंने कहा—

“चलो किरण—माँ को चल कर देखें।”

किरण ने एक शब्द भी उत्तर में नहीं कहा। वह चुपचाप उठ खड़ी हुई।



११

लेडी शादीलाल त्रिभुवनदास को देखकर वाग-वाग हो गई। वे विस्तर पर आधी उठकर दोनों हाथ फैलाकर आँसू बहाती हुई बोली—“आओ मेरे बच्चे, तुम नहीं जानते—तुमने माँ को कितनी तकलीफ दी है। यह तुम्हारा घर है, और हम तुम्हारे माता-पिता हैं—फिर मृत ‘सर’ साहब ने एक जरा-सी बात कर दी तो तुम घर छोड़ कर चले गये? ऐसा क्यों? क्या तुम नहीं जानते कि हमारी सारी सम्पत्ति भी तो तुम्हारी ही है। दोनों खानदानों के तुम्हीं एक सितारे हो—बेटे, फिर ऐसा क्या सोचा। मैं नहीं जानती मृत ‘सर’ को ऐसा क्या खब्त सवार हुआ जो सारी सम्पत्ति किरण को लिख दी। सो किरण क्या उसे मंजूर कर सकती है? यों मृत सर के मन रखने की बात जुदा है।”

लेडी शादीलाल और भी बहकती रहतीं, पर सर शादीलाल

ने कहा—“अब इन फालतू बातों में क्या रक्खा है। ज्यादा मत बोलो। डाक्टर ने मना कर दिया है, मैं तो कहता ही था कि त्रिभुवन आखिर जायगा कहाँ, सब ठीक हो जायगा।” वे हो हो करके हँसने लगे।

परन्तु त्रिभुवन के मुँह से बात नहीं निकली। वे सिर नीचा किए लेडी शादीलाल के पैरों में चुपचाप बैठे रहे। किरण पत्थर की मूर्ति बनी खड़ी थी। वह अपनी सफलता पर खुश थी। पर त्रिभुवनदास की गम्भीरता को देखकर घबरा रही थी। वह एकवार दिल खोलकर उनसे बात करना चाहती थी। उसने मामले की गहराई पर विचार नहीं किया था। वह यही समझ रही थी, कि सर ठाकुरदास ने जो अपनी सब सम्पत्ति उसे दे दी है। उसी से आत्म-सम्मान से प्रेरित होकर त्रिभुवनदास चले गये हैं, परन्तु इसके साथ ही वह उनकी गहरी उदासी और मानसिक वैकल्य का कारण नहीं जानती थी। उसे इस बात का तनिक भी संदेह न था कि त्रिभुवनदास उसे प्राणों से अधिक चाहते हैं। फिर पिता का यह दान उन्हें इतना अखरा क्यों? वे दुःखी क्यों हुए? विक्षिप्त कैसे हो गये? क्या वे सम्पत्ति का मुझसे अधिक समझते हैं? पापा ने यदि किसी कारण यह किया भी था—तो उन्हें खुश होना चाहिए था—मैं क्या उनसे जुदा हूँ!

उसने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया कि सर ठाकुरदास ने उसके और त्रिभुवनदास के विवाह-सम्बन्धी वाग्दान को भङ्ग कर दिया था। उसका सर शादीलाल ने यह कहकर समाधान कर दिया था कि सर ठाकुरदास बड़े ऊँचे विचार के पुरुष थे। उन्होंने कदाचित् यह सोचा हो कि हमारे वाग्दान से विवश होकर नहीं, प्रत्युत प्रेम और स्वेच्छा ही से दोनों का विवाह होना अधिक ठीक है।

परन्तु न तो सर शादीलाल ने—न किरण ने ही इस बात पर विचार किया था कि सर ठाकुरदास ने जो वाग्दान भङ्ग के दण्ड

स्वरूप अपनी विशाल सम्पत्ति किरण को दे दी थी—इसका स्पष्ट कारण था कि सर शादीलाल को ऐसी आशङ्का हो रही थी कि कुछ ऐसे कारण प्रकट हो जायेंगे—जिससे किरण और त्रिभुवनदास का विवाह ही असम्भव हो जायगा। तथा स्वेच्छा से वे विवाह न कर पाएँगे।

अलवत्त, इस पहलू पर त्रिभुवनदास का ध्यान गया और वे इस सोच में पड़े कि एक तरफ तो पिता का ऐसा विकट और असंभाव्य निश्चय और दूसरी ओर प्राण-त्याग। इन दोनों के बीच कोई मर्म-न्तक वेदना व्याधा है जो अज्ञात है, वह क्या है, यह जानने की चेष्टा करके भी त्रिभुवनदास नहीं जान सके। परन्तु एक विचार उनके मन में अवश्य घरकर गया, उन्होंने सोचा—अवश्य ही कोई ऐसी अप्रिय घटना होने वाली है, जिसे पिता जीते-जी देख नहीं सकते थे। उसके प्रकट होने पर सम्भवतः उनकी मान मर्यादा ही चली जायगी। तथा सर शादीलाल उनके पुत्र से अपनी कन्या का विवाह करना पसन्द नहीं करेंगे। इसी से उन्होंने वाग्दान का भङ्ग कर दिया। यह उनकी शालीनता थी, आत्म सम्मान था। फिर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण को देकर उन्होंने अपना बड़प्पन भी प्रकट किया।

इन्हीं सब कारणों पर विचार करके पिता के आत्म-सम्मान को चार चाँद लगाकर त्रिभुवनदास ने पिता का घर त्याग दिया था। और वे उस रहस्य की खोज में थे जो सबके मूल में काम कर रहा था।

जब त्रिभुवनदास ने किसी बात का जबाब ही नहीं दिया तो लेडी शादीलाल चुपचाप आँसू बहाने लगीं। इससे घबरा कर सर शादीलाल ने वातावरण को बदलने की नियत से कहा—“किरण, तुम ज़रा जलपान का ठीक-ठाक कर दो बेटी।”

फिर पत्नी की ओर रुख करके उन्होंने कहा—“नाहक तबियत मत परेशान करो, उन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ।”

और वे मन की चंचलता दूर करने के लिए व्यस्त भाव से कमरे से निकल गए ।

त्रिभुवनदास ने उठते हुए कहा—

“मैं फिर आ जाऊँगा माँ, किन्तु आप अपनी सेहत का ख्याल रखिए । वे कुछ और भी कहा चाहते थे कि फिर एकाएक उनका विचार बदल गया और वे तेजी से उठ कर बाहर चले आए ।

परन्तु बाहर के कमरे में उनकी भेंट किरण से हो गई । जलपान के बहाने वह वहाँ चली आई थी । और यहाँ खड़ी उनके बाहर आने की प्रतीक्षा कर रही थी । बाहर आते ही उसने त्रिभुवनदास से मन्द स्वर में कहा—

“इधर आइए ।”

त्रिभुवनदास उसके पीछे-पीछे चले गए । कोठी के पीछे जो एकान्त कुञ्ज थी—वही, जहाँ उस दिन पार्टी की रात को किरण ने त्रिभुवन से एकान्त मुलाकात की थी, किरण उन्हें ले गई । लान पर वह बैठ गई । त्रिभुवन भी वहीं बैठ गए । प्रभात की स्वर्ण किरण चारों ओर बिखर रही थी । सुन्दर हवा चल रही थी, बाग में मौसमी फूल खिले थे, उनकी भीनी सुगन्ध वातावरण में भर रही थी—यह सब देखकर त्रिभुवन का मन चंचल हो उठा । पर उन्होंने एक ठण्डी साँस लेकर कहा—“किरण, मुझे तुमसे कुछ कहना है ।”

“मुझे भी बहुत कुछ कहना है, परन्तु पहिले आपही कहिए ।”

त्रिभुवन ने बिनाही उसकी ओर ताके कहा—

“कहना यह है कि तुम कृपा कर मेरे यहाँ मत आया करो ।”

“इससे क्या आपको दुःख होता है ?”

“हाँ दुःख होता है” त्रिभुवन ने सचमुच दुःखी होकर कहा ।

सुनकर किरण का मुँह उतर गया, परन्तु त्रिभुवन ने कहा—“इसके

सिवा यह उचित भी नहीं हैं। तुम्हें मालूम है—पिताजी ने हमें पृथक् कर दिया है।”

“पापा ने हमें पृथक् नहीं किया है, केवल वचन का बन्धन हटा लिया है। हमें स्वेच्छा से प्रेम करने का स्वातन्त्र्य दिया है, क्या मैं अब निर्लज्ज बन कर आप से यह कहूँ कि मैं आप को प्यार करती हूँ। यही चाहते हैं तो फिर.....”

उसके आँठ काँप कर रह गए। और आँखों से आँसू भरने लगे। त्रिभुवन ने मन को स्थिर रक्खा। उन्होंने कहा—

“यह बात नहीं है किरण, पिताजी ने वाग्दान ही वापस नहीं लिया—हमें विभक्त भी कर दिया”

“किस प्रकार?”

“अपनी सब सम्पत्ति तुम्हें देकर!”

“इससे क्या होता है, मैं तो अपने को आप से पृथक् नहीं समझती।”

“पर पिताजी ने स्थिर रूप से ऐसा ही समझा। उसका चाहे भी जो कारण हो, हमें पृथक्, विभक्त समझ ही कर अपनी सब सम्पत्ति तुम्हें दी है, वह भी दण्ड समझ कर।”

“तो मैं तो वह सम्पत्ति लूँगी नहीं, आपसे पृथक् हूँगी नहीं।”

“यह तुम न कर सकोगी। पिताजी ने किसी कारण ही से यह व्यवस्था की है।”

“वह कारण क्या है?”

“यह मैं नहीं जानता हूँ पर मैं उसकी गुरुता को जान गया हूँ। हमारा परस्पर विवाह नहीं हो सकेगा।”

“खूब अच्छी तरह हो सकेगा, तुम मुझे इस तरह धकेल कर फेंक नहीं सकोगे, तुममें इतनी ताकत नहीं है।”

यह पहिली बार ही ‘तुम’ सम्बोधन सुनकर त्रिभुवनदास ने विच-

लित होकर किरण की ओर देखा । उत्तेजना के कारण उसका मुँह लाल हो रहा था । और आँखें डबडबा रही थीं ।

देखकर त्रिभुवनदास ने आँखें नीची कर लीं । उनका संयम च्युत होने लगा । परन्तु उन्होंने मनकां स्थिर किया । धीरे से कहा—
“किरण, मेरी दुर्बलता यदि तुम जान गई हो तो मुझे तुम सहारा दो—मुझे बल दो ।”

“तो तुम मेरा हाथ पकड़ो ।”

किरण ने अपना चम्पकवर्णी हाथ आगे बढ़ा दिया । उसकी आँखों से प्यार की अटूट धार बहने लगी । परन्तु त्रिभुवनदास चुपचाप निश्चल बैठे रहे । उन्होंने आँख उठा कर भी उस ओर नहीं देखा ।

किरण ने कहा—“अब तो मैं निर्लज्जता पर उतर ही आई हूँ फिर कभी क्यों रखूँ ? कहां, यह हाथ क्या तुम्हारे योग्य नहीं है ।”

त्रिभुवन का मन हाहाकार करने लगा । उन्होंने कहा—“तुम समझती नहीं किरण ।”

“तो तुम मुझे समझाते क्यों नहीं ।”

“मैं कुछ जानता भी तो नहीं, परन्तु पिताजी को आज्ञा मैं प्राणों के मूल्य पर भी नहीं उल्लंघन कर सकता ।”

“मैं भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती ! पापा ने कहा था—यदि हम चाहें तो...”

“पर यदि हम नहीं चाहें ?”

“तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि तुम मुझे घृणा करते हो, तुमने मुझमें कोई दोष देखा है, क्या मैं तुम्हारी सेवा के योग्य नहीं हूँ ।”

इस बार किरण की आँखों में आँसू नहीं थे । वाणी में तीखापन और नेत्रों में प्रकाश था । रोषावेश से उसके नथुने फूल रहे थे ।

किन्तु उसका भी त्रिभुवनदास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।
उन्होंने कहा—

“यह बात नहीं है ।”

“तब कौन-सी बात है ?” किरण ने क्रोधित होकर कहा ।

“मुझ निरीह पर क्रुद्ध होना बेकार है किरण, मैं नहीं बता सकता, मैं मजबूर हूँ ।”

“तो तुम मेरी अवज्ञा करते हो ? मेरा अपमान करते हो ?”
किरण बहुत ही उत्तेजित हो उठी ।

“नहीं किरण—किन्तु...”

“किन्तु-परन्तु क्या ? क्या मैं कीड़ा-मकोड़ा हूँ । तुम बहुत बड़े
आदमी हो सकते हो—परन्तु इतने बड़े नहीं कि दूसरों का अप-
मान करो ।”

“परन्तु इसमें अपमान की कोई बात ही नहीं है ।”

“तो तुम इस प्रकार मेरी इस निर्लज्ज, धृष्ट याचना का तिरस्कार
करके मेरा-मेरे खानदान का सम्मान बढ़ा रहे हो ? यही तुम्हारी
शालीनता है ? मैं तुम्हें चैलेञ्ज करती हूँ कि या तो तुम मेरा—
हमारा कोई कुसूर बताओ । क्या मेरे खानदान में—माता-पिता में—
मुझमें कोई दोष है, कोई लांछना तुमने सुनी है, पापा ने कुछ ऐसी
बात तुमसे कही है ?”

त्रिभुवनदास का मुँह मिट्टी की भाँति तेजहीन हो गया । वे कुछ
कहना चाहते थे—पर कह न सके । किरण उठ खड़ी हुई । उसने
कहा—“अच्छी बात है—मैं अपने सब प्रस्ताव वापस लेती हूँ—
मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने कायर हो । अब मैं तुम्हें हृदय से
घृणा करती हूँ । साथ ही तुम्हारे पिता के दान को अपना सब से
बड़ा अपमान समझती हूँ ।”

वह तेजी से चली गई । त्रिभुवनदास हक्का-बक्का, खड़े के खड़े रह गए । इसके बाद वे धीरे-धीरे कोठी के बाहर चले गये ।



१३

किरण ने सीधे पिता के पास आकर कहा—

“पिता जी, हमें अभी, इसी समय यहाँ से घर चलना चाहिए, पराये घर में रहने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है ।”

सर शादीलाल पुत्री के इस अतर्कित—अकल्पित भाषण को सुनने को तैयार न थे । उन्होंने अकचकाकर कहा—

“हुआ क्या है बेटी ?”

“यह कहिए क्या नहीं हुआ है—पिताजी, आपको यदि अपनी मर्यादा का कुछ भी विचार है—तो इसी समय यहाँ से चल दीजिए । जिनका घर है, वे उसे सम्हालें या चाहे जो करें । हमारा इससे कुछ वास्ता नहीं है ।”

“क्या त्रिभुवन ने तुमसे कुछ कहा है ?”

“आपको क्या यह नहीं दीखता कि वे हम लोगों की छाया से भागते हैं, जैसे हम अछूत हैं ? क्या वे ऐसे बड़े बाप के बेटे हैं ? उन्हें इतना घमण्ड है । पिताजी, आप कैसे यह बर्दाश्त कर रहे हैं ।” परन्तु सर शादीलाल ने कहा—“बेटी, सर ठाकुरदास हमारे परम मित्र थे । वे एक सत्यनिष्ठ सत्पुरुष थे । वे बड़ी ही दुःखद अवस्था में स्वर्गवासी हुए हैं, ऐसी हालत में हम कैसे उसे छोड़ सकते हैं ?”

“मैं समझ गई पिताजी, आपको भी उनकी सम्पत्ति का लोभ हो गया है। धन, सम्पत्ति ऐसी ही वस्तु होती है, परन्तु मैं कहे देती हूँ—मैं यह दान किसी अवस्था में भी स्वीकार नहीं करूँगी, साथ ही साथ आप यदि यहाँ—इसी मकान में रहना ही चाहते हैं, तो आप रहिए, मैं यहाँ एक क्षण भी न रहूँगी।”

“परन्तु बेटी, तेरे इस गुस्से का कारण क्या है? जो तू मुझपर भी लांछन लगा रही है। क्या त्रिभुवन से तेरी कुछ बातें हुई हैं।”

“सब बातें हो चुकीं।”

“यानी।”

“पिता जी, मैं जाती हूँ।”

और वह तेजी से अपने कमरे में घुस गई। भीतर से द्वार बन्द कर लिया।

सर और लेडी शादीलाल दोनों ही पुत्री के इस भाव-परिवर्तन से आश्चर्यचकित हो गये।

एक नवीन चिन्ता की धारा उनके मस्तिष्क में घूमने लगी। लेडी शादीलाल ने माथा ठोकर कहा—“यह क्या हो गया? अब क्या होगा?”

“सब ठीक हो जायगा, तुम आराम करा” सर शादीलाल ने माथे पर हाथ फेरते हुए कहा। और वे अपनी व्यग्रता छिपाने को लाइब्रेरी रूम की ओर घूम गये।

किरण बहुत समझाने-बुझाने पर भी वहाँ रहने को राजी नहीं हुई। वह अपनी कोठी पर चली गई। परन्तु सर शादीलाल विचलित नहीं हुए। उन्होंने धैर्य से अन्त तक सब देखने का—सब सहने का निर्णय कर लिया। पत्नी को भी समझा-बुझाकर उन्होंने अपने साथ सहमत कर लिया।

त्रिभुवनदास किरण के इस प्रकार क्रुद्ध होने से विमूढ़ हो गये।

आज उन्हें अपने जीवन की सच्ची शून्यता का अनुभव हो गया । वियोगाग्नि से नहीं, शोकाग्नि से उनका हृदय जलने लगा । उनकी दृढ़ता-स्थिरता, और कर्तव्य सब कुछ उन्हें तार-तार होकर बिखरता-सा जान पड़ा । पिता की मृत्यु, पूज्य पूजन की भावना, भूत-भविष्य सब कुछ भूलकर वे सोचने लगे कि अब क्या होगा ।

दिन में यन्त्रवत वे खोप-खोप से रहकर काम करते रहे । रात भर वे स्वप्न देखते और करवटें बदलते रहे । परन्तु इस बार उन्होंने अपनी वेदना को प्रकट नहीं होने दिया ।

किरण उनके घर नहीं आई । सन्ध्या को जब वे घर लौट रहे थे तो उन्होंने स्वयं ही उसे वहाँ न आने का आदेश दिया था और जिस प्रकार वह क्रुद्ध हो गई थी, उन्हें आशा नहीं करनी चाहिए थी कि वह वहाँ आवेगी । फिर भी आशा की एक धुँधली रेखा उन्हें जल्दी-जल्दी खींचे लिए जा रही थी । उन्होंने आँखों ही आँखों में देख लिया, किरण के रहने का कुछ भी चिन्ह वहाँ नहीं है । उनका जैसे जीवन-दीप ही बुझ गया हो, इस प्रकार वे बिल्लौने पर पड़ गए । गोवर्धन के पूछने पर कह दिया—भोजन कर लिया है । और वे मुँह फेरकर पड़ रहे ।

प्रातःकाल वे जल्दी-जल्दी नित्य कर्म से निपट कर कोठी पहुँचे । सर शादीलाल ने शङ्कित नेत्रों से उन्हें देखा, कहा—“आओ, आओ” परन्तु उनका कल का वह आग्रह स्वागत आज न था । वे लेडी शादीलाल के कमरे में गए, वे देखकर चुपचाप पड़ी रहीं । न बोलीं, न कुछ कहा । त्रिभुवन की व्याकुल आकुल दृष्टि चारों ओर घूमकर कुछ खोई वस्तु को ढूँढ़ने लगी । पर जो वस्तु खो गई थी वह उन्हें नहीं मिली । त्रिभुवन लाज-ग्लानि और क्षोभ से अधमरे से बैठे रहे । लेडी शादीलाल ने उनके कुशल प्रश्नों के बहुत ही ठपठे जवाब दिए । वहाँ से उठकर उन्होंने सर शादीलाल से गप-शप करके उन्हें

खुश करना चाहा पर वे भी उड़ी-उड़ी बातें करने लगे । निरुपाय त्रिभुवनदास उठकर भवन से बाहर चले आए । किरण से उनकी मुलाकात नहीं हुई । किरण यहाँ है या नहीं, यह भी उनसे किसी ने नहीं कहा । आज इस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे सारी पृथ्वी पर वे एक अभिशापित व्यक्ति हैं । और पृथ्वी पर वे सर्वथा निस्संग और एकाकी हैं ।

खून के मुकदमे में सिर्फ दो दिन शेष थे । अब वे सीधे दफ्तर में आकर उस मुकदमे की तैयारी करने लगे । सब ओर से आँख कान और ज्ञान-केन्द्रों को समेट, जीव-जीवन सब को भूल-मुकदमे में उलझ गए । आवश्यक हिदायतें उन्होंने मित्र महाशय से लीं । और मुकदमे के मामले पर अपने नोट तैयार करने में व्यस्त हो गए ।



१४

जेल में तीन बार त्रिभुवनदास ने हत्याकारिणी से मुलाकात की । परन्तु उसने ऐसी मजबूती से अपने होंठ सी लिए कि एक शब्द का भी उत्तर नहीं दिया । अन्तिम बार तो उसने मुलाकात करने ही से इन्कार कर दिया ।

परन्तु किसी अज्ञात कारण से त्रिभुवनदास की अन्तःप्रेरणा हत्याकारिणी की ओर बढ़ गई । वे उसका सही परिचय पाने को व्याकुल हो उठे । रह-रह कर उनके मन में यह आशङ्का उत्पन्न होने लगी कि हो न हो, इस स्त्री से हमारे पारिवारिक दुर्भाग्य का कुछ सम्बन्ध अवश्य है । कभी-कभी तो वे अत्यन्त भीत-विचलित होकर

इस गूढ़ रहस्य की व्यग्रता, वर्तमान परिवर्तित परिस्थिति इन सब ने मिलकर इस एक सप्ताह में ही उन्हें अस्त-व्यस्त और निस्तेज कर दिया ।

पेशी के दिन अदालत में भारी भीड़-भाड़ थी । सामयिक पत्रों ने केस में काफी रङ्गीनता ला दी थी । आरोप स्पष्ट था । अपराध स्वीकृत था । परन्तु हत्या का अपराध बड़ा विचित्र होता है—इसमें एक तनिक-सी बात से ही दण्ड धाराएँ बदल जाती हैं ।

त्रिभुवनदास का यह प्रथम केस था । उसी केस पर उनका भविष्य निर्भर था । उनकी प्रतिभा तथा वाग्धारा का प्रवाह देखने सर और लेडी शादीलाल दोनों आये थे । बा० त्रिलोकनाथ मेज के किनारे बैठे फाइल पर लाल पेन्सिल से लकीरें खींच रहे थे । त्रिभुवनदास चञ्चल भाव से अदालत के मध्य में खड़े अपने असंयत मन को संयत करने की चेष्टा कर रहे थे । किरण नहीं आई थी, पत्रकारों की भीड़ भारी थी । तथा बार के बहुत से वकील और अदालत के निठल्ले लोग जमा थे ।

हत्याकारिणी स्थिर चित्त हो इस प्रकार बैठी थी, जैसे वह किसी नाटक का तमाशा देखने बैठी हो, परन्तु आज उसमें भी परिवर्तन था । सिग्रेट जो अदालत और पुलिस के बहुत अनुरोध निषेध पर भी उसने पीना नहीं छोड़ा था, आज नहीं पी रही थी । उसकी भाव भङ्गिमाओं में आज उद्धत, चाञ्चल्य और असंयत भाव भी न था । वह गम्भीरता से—शालीनता से बैठी इस प्रकार वहाँ की भीड़ पर उपेक्षा की दृष्टि डाल रही थी, जैसे वह सब को तुच्छ कृमि कीट समझती है ।

त्रिभुवनदास ने उसके निकट जाकर स्नेह से उसका कन्धा पकड़ कर कहा—“ईश्वर के लिये अब भी एक शब्द कह दीजिए । कुछ

बता दीजिए—सम्भव है उससे आपका भला हो । मुझसे कुछ कहने में आपका अनिष्ट होगा ही नहीं ।”

परन्तु हत्याकारिणी ने स्निग्ध दृष्टि से उसे देखा, और मुस्कुरा दिया । धीरे से अपने कंधे पर से उनका हाथ हटाया और फिर ऐसी दृष्टि से उन्हें निहारा कि त्रिभुवनदास को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे तप्तशलाका की भाँति वह दृष्टि उनकी आँखों में भिंद गई हो ।

फिर वह एक बार समुपस्थित भीड़ को घूमती नज़र से देखकर, उन सब छोटे बड़े उपस्थितजनों को तिरस्कार और उपेक्षा से देखती हुई, नीची दृष्टि करके अचल अडिग बैठ गई ।

त्रिभुवन की वहस का समय आ उपस्थित हुआ । तरुण वैरिस्टर अपने काले चोंगे का सम्हाल कर अपने स्थान पर आ खड़ा हुआ । क्षण भर उसने त्रिलोक बाबू से परामर्श किया और फिर उसने अदालत को सम्बोधन करके कहा—“माई लार्ड, यह एक असाधारण मुकदमा है । खून हुआ है और अभियुक्ता ने अपना अपराध स्वीकार किया है । परन्तु उसकी स्वीकृति भावुकता से परिपूर्ण है । हत्या का कोई भी चश्मदीद गवाह नहीं है, अभियुक्ता को हत्या स्थल पर ही गिरफ्तार किया गया है, उसने डटकर ८ घन्टा पुलिस का सामना किया है, तथा केवल एक वाक्य उसने खून के सम्बन्ध में कहा है कि—“पूज्यपूजन के लिए यह काम किया गया है ।” यह वाक्य अपराध की स्वीकृति मूलक नहीं है, इससे यत्किंचित खून के कारण पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है, और अधिक से अधिक यह संदेह किया जा सकता है, कि अभियुक्ता इस खून के मूल कारण का यत्किंचित ज्ञान रखती है, परन्तु अदालत को बताना नहीं चाहती । निस्संदेह कानून को सहायता न देने का आरोप लगाया जा सकता है । परन्तु खून का अभियुक्ता से कुछ भी सम्बन्ध प्रमाणित नहीं ।”

तरुण वकील की इस युक्ति और भाषण की स्पष्टता से उपस्थित

सब जनता प्रभावित हो गई। सर शादीलाल मगन होकर पत्नी से तारीफों के पुल बांधने लगे। श्री दास ने उनकी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखा। त्रिभुवनदास ने अपनी बहस आगे बढ़ाई। उन्होंने गवाहों की आलोचना करते हुए कहा—“गवाहों ने अभियुक्त को हत्यास्थल पर उपस्थित रहने तथा ८ घन्टा पुलिस से मुकाबिला करके गिरफ्तार होने का वर्णन किया है। परन्तु इसमें मार्के की बात यह है कि मृत व्यक्ति के पास—जब वह जीवित था—उसका पहुँचना, पहुँचकर उसकी हत्या करना, किसी ने वयान नहीं किया।”

“यह संभव है कि वह हत्या होने के बाद वहाँ पहुँची हो, यह भी संभव हो सकता है कि हत्या की संभावना से वह परिचित हो और मृत व्यक्ति को सावधान करने वह वहाँ गई हो। यह भी संभव है कि उसने हत्यारे का विरोध किया हो और सफल न हुई हो। यह भी संभव है, हत्यारे को बचाने के लिए उसने अपने ऊपर जोखिम ली हो। ये उपरोक्त सारी संभावनाएँ तो हैं, परन्तु उसी ने यह खून किया है, इसकी संभावना का कोई कारण नहीं दीख पड़ता।”

“हत्या करके वह भाग सकती थी। उसे किसी ने वहाँ आते तथा हत्या करते देखा नहीं था, परन्तु इसके विपरीत—वह वहाँ मोर्चा जमा कर पुलिस का सामना करने बैठ गई। क्या इसका यह अर्थ नहीं हो सकता है कि उसने हत्याकारी की ओर से पुलिस का ध्यान हटा लेने को यह कौशल किया हो? यदि उसीने किसी कारण से हत्या की है—इस कारण पर शहादत में कोई प्रकाश नहीं डाला गया कि उसने व्यर्थ पुलिस से क्यों झंझट किया। वह तुरन्त ही क्यों न गिरफ्तार हो गई। आठ घंटों तक निरन्तर पुलिस से संघर्ष करना साधारण घटना नहीं है, उसका मूल कारण भी साधारण नहीं हो सकता। परन्तु शहादत ने इस काम को महज़ एक जुर्म समझा है। उसके मूल कारण के महत्त्व पर विचार ही नहीं किया। क्या कोई

भी व्यक्ति यह आशा कर सकता है कि एक हत्याकारिणी स्त्री किसी भी कारण से हत्या करने के बाद मन में ऐसा साहस रख सकती है ?”

एक बार उन्होंने दबी नज़र से हत्याकारिणी की ओर देखा— वह मन्द मुस्कुरा रही थी। फिर उन्होंने अदालत में उपस्थित भीड़ की ओर देखा—जो उत्सुकता एवं कोतूहल से उनकी बहस सुन रही थी।

उन्होंने कहना जारी रखा—“अपराध हुआ है, केवल यही जुर्म नहीं है, अपराध क्यों किया गया है, इसका मूल विवेचन होना आवश्यक है। अभियुक्त ने जो शब्द इस सम्बन्ध में कहे हैं, वे गम्भीर हैं और यह स्पष्ट है कि उन शब्दों से अभियुक्त जैसी स्थिति की स्त्रियों से कोई सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता, इसलिए इसलिए.....”

यहाँ त्रिभुवनदास की वाणी अटक गई। उपर्युक्त शब्द कहते-कहते जैसे उनके प्राण मुँह को आने लगे। जो भीति, जो आशंका उनके रोम-रोम में घर कर गई, उसी ने जैसे आकर उनका गला दबोच दिया। उनकी ऐसी दशा देख कर मित्र बाबू घबड़ा कर सहायता को उठे, पर उन्हें राककर त्रिभुवनदास ने कहा—“आप बैठिए—मैं अभी अपना वक्तव्य पूरा करता हूँ, क्षण भर मौन रह कर उन्होंने कहा—“अच्छा, आप कल्पना कीजिए कि यह भाग्यहीना महिला जो आज हत्या के अपराध में लिप्त और पूर्व जीवन में नगर-कोटों के निष्ठीवन के ठीकरों में परिगणित थी, कभी एक संभ्रान्त महिला हो, उसको निष्ठा कुल-मर्यादा और वैयक्तिक मान बहुत ऊँचा रहा हो। उसे उसके जीवन-पथ से किसी नराधम ने भ्रष्ट किया हो तथा वही मृत सम्माननीय पुरुष ही वह नराधम हो, तथा उसी के कलुष और विश्वासघात से, जैसा प्रायः होता है, यह स्त्री भी अपने इस कुत्सापूर्ण जीवन को व्यतीत करने को विवश हुई हो, और अपने जीवन से संलिप्त किसी

महापुरुष की मानमर्यादा बचाने के कारण ही..." तरुण वैरिष्टर के आगे के शब्द उसके मुँह ही में रह गए। अभियुक्ता ने सिंहना की भाँति गर्जकर कहा—“त्रिभुवन स्वामोश।”

त्रिभुवन की बाणी जड़ हो गई। उनका शरीर पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगा। सारी अदालत का ध्यान उन्हीं पर केन्द्रित था। त्रिभुवनदास काँपते चरणों से हत्याकारिणी के कठघरे के पास जा पहुँचे। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से दोनों हाथ फैलाकर कहा—“माँ?”

और दूसरे ही क्षण दोनों—माता और पुत्र परस्पर आलिङ्गन-बद्ध थे।

हत्याकारिणी ने हाँफते-हाँफते कहा—त्रिभुवन, तूने यह क्या कर डाला? जिस बात को प्रकट न होने देने के लिए मैंने एक व्यक्ति का खून किया, उसे तूने अकारण ही प्रकट कर दिया। जब वे सुनेंगे तब....”

उसके हाँठ काँपने और आँखें आँसू बरसाने लगीं।

त्रिभुवनसे कहा—“माँ मुझे पूज्य-पूजन करने दो, पिताजी मुझपर यह अंतिम वसीयत कर गए हैं।” उन्होंने वहीं पृथ्वी पर बैठकर उस स्त्री के पैरों की धूल झाड़ी, और उनपर अपना मस्तक टेक दिया, वे भूमि पर उसी भाँति लेट गए जैसे देवता के सम्मुख दण्डवत किया जाता है। हत्याकारिणी ने आँखों से अविरल अध्रुवारा बहाते हुए कहा—“बेटा, अब-जब लाज ही उधड़ गई तो फिर भय क्या, आ छाती ठण्डी कर।”

उसने त्रिभुवनदास को छाती से लगा लिया। अदालत में सरस-राहट फैल गई। लेडी शादीलाल सुनते ही मूर्छित हो गई। सर शादी लाल किसी तरह उन्हें उठाकर घर ले गये।

जुरी ने अभियुक्ता को अपराधिनी बताया। स्त्री ने त्रिभुवनदास को फिर अदालत में एक शब्द भी नहीं बोलने दिया। त्रिभुवनदास

ने भी इच्छा नहीं की। वे माँ के अंग से अंग सटा कर कटघरे में जा खड़े हुए।

जूरी और जज ने मृत्यु दण्ड सुना दिया। दण्डाज्ञा सुनकर हत्याकारिणी ने त्रिभुवन के गेह पर एक अवाध शिशु के समान हाथ फेरा, उसका माथा चूमा, और फिर कहा—“त्रिभुवन बेटा, मैं बहुत खुश हूँ—बहुत ही खुश।”

त्रिभुवन ने फिर रुक कर उसकी चरण धूलि ली। और वह बिना पुत्र को देखे—स्थिर कदम रखती हुई पुलिस के साथ चली गई। त्रिभुवनदास इन्द्रयी पुरुष की भाँति गर्व से ऊँचा सिर किए, जनता की कौतूहलपूर्ण दृष्टि को मानो धकेलते हुए, सबके बीच से होकर चले गए।



हॉश में आते ही लेडी शादीलाल साँप की तरह फुफकार मारने लगीं। वे भाँति-भाँति की कुत्सित गालियाँ सर ठाकुरदास और उनकी पत्नी को देने लगीं—“हाय मेरी सारी इज्जत धूल में मिल गई। मैं क्या जानती थी... नहीं, नहीं—वह बात याद करने—ध्यान देने योग्य भी नहीं।” उन्होंने उठकर कहा—“चलो, अभी चलो, घर चलो, जहंजुम में जाय यह घर। और वह साँप का सपोला त्रिभुवन। वह सब जानबूझ कर ही हमें नाटक दिखा रहा था। इसीलिए हमारी लड़की को खरीदने के लिए जायदात उसके नाम की गई थी।”

सर शादीताल भी बांखला रहे थे। परन्तु वे मन ही मन भुन-भुनाते हुए कमरे में इधर से उधर फिर रहे थे।

सारे शहर में यह अफवाह उड़ चुकी थी कि नगर के लाई मेयर की पत्नी इतने दिन ठीकरों में बैठी रही और अन्त में उसने एक खून करके फाँसी की सजा पाई। अखबारों ने इसपर टिप्पणी की थी। एक पत्र ने तो स्वर्गीय सर ठाकुरदास और हत्याकारिणी का फोटो भी साथ-साथ छाप दिया था। लोग विविध-भाँति की बात रंग चढ़ाकर करते। अनेक कहानियाँ गढ़ते और अफवाहों को चाँद लगाते थे।—

इन सब बातों ने लेडी शादीलाल और सर शादीलाल को बहुत उत्तेजित कर दिया। उन्होंने तुरन्त ही सर ठाकुरदास का बँगला छोड़ दिया। जाती बार एक कड़ी चिट्ठी त्रिभुवनदास को भी लिख दी। उस चिट्ठी का यही अभिप्राय था कि आज से हमारा आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। तथा लेंट सर ठाकुरदास ने जो विल किरण के नाम किया है, वह हमारा खानदान का अप्रतिष्ठा का सूचक है और हम उसे नहीं स्वीकार कर सकते। उन्होंने यह भी सूचना दे दी कि वे कोठी छोड़कर अपने घर जा रहे हैं और अपनी सम्पत्ति को वह सम्हाल लें।

त्रिभुवनदास इस वज्रपात को जिस धैर्य से सह गये—वह आश्चर्य की बात थी। मित्रों और परिचितों में आना उन्होंने प्रथम ही वन्द कर दिया था। अब उन्होंने मित्र महाशय के यहाँ भी जाना वन्द कर दिया। उन्होंने तय किया कि सर शादीलाल, उनकी पत्नी, पुत्री, चाहे भी जो कुछ तय करें—उसके उपयुक्त कारण हैं, और वे किसी भी हालत में पिता के निर्णय के विपरीत नहीं जावेंगे। किरण को दान की हुई पिता की सम्पत्ति को नहीं लेंगे। बम्बई छोड़कर कहीं दूर देश में जा बसेंगे। तथा अपने भुजबल से जो कुछ बन सकेगा उपार्जन करेंगे। अपना यह निर्णय उन्होंने गोवर्धन को भी बता दिया, और उससे वह भी सहमत हो गया। अब त्रिभुवनदास चलने की तैयारी करने लगे। अब वे केवल एक बार जेल में अपनी

माता से और मिलना चाह रहे थे। इसीसे वे रुके हुए थे। यह भी सम्भावना थी कि केस की अपील की जाय। और इसके लिए उन्हें ही पैरवी करनी पड़े। इस घटना के तीसरे दिन बाबू त्रिलोकनाथ मित्र प्रातःकाल ही उनकी कोठरी में जा पहुँचे। देखकर पहिले तो त्रिभुवनदास घबराए फिर उन्होंने उनका स्वागत कर बैठने का कहा, परन्तु त्रिलोकनाथ ने दौड़कर उन्हें छाती से लगा लिया, उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—“भेरे शेर दिल बेटे, मैं तुम्हें मुबारकवादी देता हूँ। तुमने सब बातें मुझसे पहिले ही क्यों न कह दी। मैं कुछ ऐसी ही सम्भावना की आशंका तो कर रहा था, परन्तु घटना का अस-लियत का मुझे गुमान भी न था—परन्तु तुम शायद जानते थे।”

“हाँ, मैं जान गया था, उन्हें पहिली ही दृष्टि में देखकर पह-चान गया था ?”

“फिर भी मुझसे नहीं कहा ?”

“चाचाजी, वह मेरे पूज्यपिता की प्रतिष्ठा का प्रश्न था, फिर सन्देह तो था ही।”

“तो अकारण ही, तुम इस प्रकार उत्तेजित क्यों हो पड़े ? भरी अदालत में तुमने भेद क्यों खोल दिया।”

“मैं रह नहीं सका चाचाजी, वह मेरे पूज्य के पूज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न था—मेरी माँ की प्रतिष्ठा का प्रश्न था।”

मित्र महाशय ने त्रिभुवन की पीठ थपथपा कर कहा—“कुछ पर-वाह नहीं बेटे, तुम जानते हो मेरे कोई बेटा-बेटी नहीं है—अकेले दो प्राणी हैं, आज से तुम मेरे बेटे हुए। यद्यपि सर ठाकुरदास की बराबरी की मेरी हैसियत नहीं, परन्तु जो कुछ मेरा है, आज से तुम्हारा है। फिर तुम्हारा बुद्धिबल, प्रतिभा और साहस भी कम नहीं है, तुम नाम और धन के साथ प्रतिष्ठा भी कमाओगे। मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारी कद्र करता हूँ। सर ठाकुरदास को मैंने

सदा अपना बड़ा भाई समझा था, उनके बहुत-बहुत अहसानात मुझ-पर हैं, अब उन सब की बेचाकी उनके बेटे को अपना बेटा बनाकर करूँगा। तुम्हें अभी मेरे साथ मेरे घर चलना पड़ेगा, जो अब तुम्हारा अपना घर है—अब यहाँ इस तरह तुम नहीं रह सकते।”

त्रिभुवनदास ने आँखों में आँसू भरकर कहा—“चाचाजी, मैं नहीं कह सकता कैसे आपकी इस कृपा से मैं उद्धरण होऊँगा। परन्तु अभी आप क्षमा कीजिए। मेरे कुछ कर्तव्य हैं; उन्हें पालन कर लेने दीजिए, फिर आवश्यकता होगी तो आपके द्वार पर ही आऊँगा।”

“मेरे द्वार पर? यह कैसी बात? वह तो तुम्हारा हो चुका। जब सर ठाकुरदास किरण को अपनी अतोल सम्पदा दे सकते हैं—तो यह त्रिलोचन अपने बेटे को क्यों नहीं दे सकता? नहीं-नहीं, यह न होगा। तुम इन्कार नहीं कर सकते?”

आप जानते हैं चाचा जी, किरण ने पिता का दान स्वीकार नहीं किया है। तथा माँ का मुकदमा भी अभी अपील करना है, अभी आप मुझे मत बाँधिए, मुझे मेरे कर्तव्य से मुक्त हो जाने दीजिए।”

“तो तुम वहाँ रहकर भी वह सब कर सकते हो?”

“नहीं चाचाजी, जब तक मैं कर्तव्य मुक्त नहीं हो जाता हूँ, तब तक मुझसे कुछ मत कहिए” त्रिभुवन दास ने मित्र महाशय के पैर पकड़ लिए।

त्रिलोक बाबू ने उदास होकर कहा—“अच्छा, मैं तुम्हारी इच्छा में बाधक नहीं होना चाहता। परन्तु तुम्हें मेरी बात रखनी ही पड़ेगी। यह कहे देता हूँ।”

इतना कहकर त्रिलोक बाबू चले गये। उन्होंने त्रिभुवनदास को कुछ रुपया भी देना चाहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। त्रिलोक बाबू के जाने के बाद ही वे जल्दी-जल्दी जेल की ओर चल दिये।

+

+

+

मुलाकात होने पर उन्होंने अपराधिनी से अपील के सम्बन्ध में वार्तालाप किया। अपील की बात सुनकर उसने हँसकर कहा—

“अपील किसलिए त्रिभुवन ? मेरी मुक्ति की अवधि को तू क्या और अधिक ढालना चाहता है, क्या तू नहीं जानता कि मृत्यु का क्षण मेरे लिये महामहान्सव है, और उसकी मैं कितने चाव से प्रतीक्षा कर रही हूँ। क्या तू नहीं जानता कि मैं जीवन के सब पाप और अभिशापों से बेबाक हो चुका हूँ। और अब जीवन से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह गया।”

“मैंने अपनी आत्मा को अपने जीवन से उसी समय प्रथक कर दिया था, जब मैंने अपनी भूल को समझा। इसके बाद आत्मा की आवाज बराबर मैं सुनती रही, परन्तु जीवन की रक्षा भी मेरे लिए अनिवार्य हो गई। मैंने अपने जीवन के प्रत्येक कलुषको देखा और उसका लेखा जोखा आत्मा को दिया—इसी से मुझे जीवित रहना पड़ा। मेरे उस जीवन की विभीषिका की दुनियाँ में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। परन्तु वह मैंने सहन की।”

“सब बातें कहने योग्य नहीं हैं। परन्तु अब जीवन्मुक्ति का उपयुक्त समय है, मुझे प्रसन्नता से मुक्त होने दो—पाप और ताप की इस गठरी के बोझ को—इस शरीर को मैं नहीं लाद सकती।”

“अब मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ मेरे आराध्यदेव तुम्हारे पिता—मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कदाचित् तुम नहीं जानते, तुम बड़े पण्डित हो, बड़े बाग़्मी हो, पर मेरी दृष्टि में बच्चे ही हो, इसलिये तुम नहीं समझ सकते कि मेरे आराध्यदेव—तुम्हारे पिता—जब तक जीते रहे, मेरी प्रत्येक श्वास पर—प्रत्येक क्षण पर प्रतीक्षा करते रहे। उनकी चरण शरण में लौट आने की मेरी भी कितनी अभिलाषा थी। यह मैं कैसे कहूँ—परन्तु यह शरीर ही उसका बाधक था—इसे लेकर मैं उनके पास लौट नहीं सकती थी। पुत्र, तन-मन से पवित्र-स्नात होकर

ही पूज्य पूजन होता है, अपवित्र तन-मन से नहीं। अतः उसके पास लौट चलने के लिए देह-त्याग तो अनिवार्य था। परन्तु—मेरे वे आराध्यदेव—तुम्हारे पिता स्वयं भी देह-बद्ध थे, फिर मैं देह त्याग कर भी उन्हें कैसे पाती। इसीसे मैं देह त्याग न कर, प्रतीक्षा करती बैठी रही।”

“परन्तु कहाँ? आग के अंगारों की जलन से जो चीस उठती थी, वह बिल्कुल असह्य नहीं प्रतीत होती थी, शरीर मेरा उन अंगारों पर जल रहा था, पर मेरी आत्मा प्रेम से पुलकित थी। जिसका प्रवाह तुम्हारे पिता—मेरे आराध्यदेव के हिमालय के समान उच्च और शुभ्र कूट से निरन्तर प्रवाहित था। मैं जलती रही, हँसती रही और जीती रही।”

“परन्तु उनका नरमेघ पूर्ण हुआ। और उसमें अपनी आहुति देकर वे दिवंगत हुए। अब मैं यहाँ कहाँ? आहुति के साथ ही गंध भी जाती है। प्रिय, इसलिए अब मेरी भी आहुति पूर्ण होने दा, अपने देह की आहुति देने दो—तुम तो जानते ही हो, बिना मेरी आहुति-दान के उनका यज्ञ पूर्ण नहीं होगा, पुण्य सम्पूर्ण नहीं होगा।”

कुछ ठहर कर उसने फिर कहा—“श्रीराम ने सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर यज्ञ पूर्ण किया था। परन्तु वह नरमेघ नहीं था, अश्वमेघ था। आत्मनिष्ठा के लिए नहीं था, राज्यानिष्ठा के लिए था। राम दिव्य पुरुष थे, पुत्र, यह सत्य है, परन्तु उनका यह यज्ञ हमारे इस यज्ञ से नगण्य था। वह अवश्वमेघ था—यह नरमेघ है। वह राज्यनिष्ठा का सूचक था—यह आत्मनिष्ठा का सूचक है। उसमें मार्वाभौम राज्य सत्ता उद्घोषित की गई थी, इसमें जीवन के उत्कर्ष की घोषणा है। राम चाहे जितने बड़े थे, परन्तु उन्होंने निष्पाप सीता पर अत्याचार किया था—इसमें उनका राजनैतिक दायित्व था, इसीसे

अश्वमेध से अधिक पुण्य-कृत्य के अधिकारी न हो सके। परन्तु मेरे आराध्यदेव तुम्हारे पिता ने, सदोप-पाप कमा की पत्नी निष्ठा से पूजा की। मैंने वह पूजा देखी नहीं, केवल-समझी। इसीसे मानवों में वे राम से बहुत ऊँचे उठ गए। वे नरमेध के पुण्य के अधिकारी हुए, उन्होंने आत्माहुति दी। मैं उनकी पत्नी-सोने की-चाँदी की-लोहे की कल्पित मूर्ति नहीं, सजीव जीवित सत्त्व हूँ, अब मैं आत्माहुति देकर तुम्हारे पिता के नरमेध पुण्य-पर्व को पूर्ण करूँगी। उस दिन पुत्र, तुम वर्ष मनाना, उत्सव मनाना” इतना कहकर उस स्त्री ने त्रिभुवनदास को अपनी छाती से लगा लिया।

त्रिभुवनदास ने झुककर माता के चरणों में माथा टेक दिया। उन्होंने वाष्पावरुद्ध कण्ठ से कहा—“मा, निस्संदेह मैं अबोध हूँ और आपकी इस गरिमा को समझ पाने के अयोग्य हूँ। मैंने पिता जी को पूजा करते देखा है। उन्होंने मुझे पूज्यपूजन की वसीयत की थी। वह मैंने पितृआज्ञा शिरोधार्य कर स्वीकार की थी, परन्तु आज मा, वह पूजन-अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा-सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण आदर के साथ आपके चरणों में अर्पण करता हूँ।”

उन्होंने पृथ्वीपर बैठकर उस हत्याकारिणी स्त्री के दोनों फटे हुए-मैले और अशोभनीय चरण अपनी गोद में ले लिए। और उनपर अपने आवेशित होठ लगा दिए।

१६

लेडो शादीलाल का आक्रोश-क्रन्दन, गर्जन-तर्जन समाप्त नहीं हुआ। सर शादीलाल यद्यपि चुप थे। परन्तु उनका आन्तरिक क्रोध

और विरोध उनकी प्रत्येक चेष्टा में था। उन्हें इस बात से बड़ा ही आघात पहुँचा था कि समाज में अब उनके सम्मान में बट्टा लग गया।

क्रोध में बड़बड़ाती हुई पत्नी के निकट जाकर उन्होंने कहा—
“यह तो बहुत बुरा हुआ। पर बकभक्क करने से क्या होगा? अब यह कहो—किरण का क्या होगा? अब कौन उससे विवाह करने को राजी होगा। मेरी तो सारी ही प्रतिष्ठा धूल में मिल गई।”

“होगा क्या? उसे जहर देकर मार डालना होगा? मैं कहती थी कि इस मामले में जरूर कुछ भेद है। पर तुम समझना ही नहीं चाहते थे। हर बार यही कहते थे कि सब ठीक हो जायगा। अब कहो कैसे होगा?”

“मैं तो कहीं का न रहा, परन्तु खैर, जो हुआ सो हुआ। अभी तक मेरा बिगड़ा क्या है, मुझे धोखा दिया गया है। मैंने तो किसी को धोखा नहीं दिया। मैं किरण की शादी ऐसी जगह करूँगा कि जिसका नाम नहीं, भले ही मुझे अपना सर्वस्व देना पड़े।”

“परन्तु मैं कहती हूँ कि वह ठग जो अपनी सब सम्पत्ति किरण को दे गया है, सो कोई अहसान में नहीं, दण्डस्वरूप दी है। तब उसका मतलब हमने नहीं समझा था। आज समझा है। अब यह सम्पत्ति नहीं लौटाई जायगी। वह किरण की है—किरण की रहेगी। हमारा उस जालिए ने बहुत अनिष्ट किया है। हाय राम! वह औरत? हे भगवान्, याद करने से मन में नफरत आती है—वह उसका बेटा है? छीः, छीः, नहीं, नहीं, वह सम्पत्ति नहीं लौटाई जायगी। त्रिभुवनदास से जो कुछ करते बने कर ले।”

लेडी शादीलाल यह क्रोधोद्गार निकाल रही थी। धीरे-धीरे किरण आकर माता पिता के पास खड़ी हो गई। उसका चेहरा सफेद था। पर एक दृढ़ता की छाया उसके नेत्रों में थी, उसके दोनों होठ परस्पर चिपके हुए थे।

लेडी शादीलाल ने उसे देखकर कहा—“कह देती हूँ किरण, उस धूर्त के साथ हमें कुछ भी रियायत नहीं करनी है। प्रोपर्टी सब अपनी है। उसे वह ले नहीं सकता।”

सर शादीलाल ने कहा—“लेकिन इससे लोग यह न समझेंगे कि हमारा उस खानदान से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है?”

“समझेंगे तो समझें? इतनी बड़ी प्रोपर्टी मैं न छोड़ूँगी।”

“पर तुम समझती नहीं, खूबसूरत ने यह जाल बिछाया था कि प्रोपर्टी के चक्कर में किरण त्रिभुवन से शादी करने को राजी हो जायगी। फिर प्रोपर्टी जाती कहाँ है, यह तो सिर्फ धोखे की टट्टी थी।”

“किरण उसके मुँह पर झाड़ू भी नहीं मारेगी, और प्रोपर्टी हम वापस देंगे नहीं।”

इतनी देर बाद किरण ने मुँह खोला। पिता के निकट आकर किरण ने कहा—“पिताजी, मैं जाती हूँ?”

“कहाँ बेटी?”

“पापा की कोठी में!”

“तू क्यों? मैं वहाँ किसी कारिन्दे की व्यवस्था कर दूँगा।”

“नहीं मैं ही जाऊँगी!”

“लेकिन हम तो नहीं जा सकते वहाँ!”

“आपको कष्ट करने की क्या जरूरत है!”

“तू क्या वहाँ अकेली रहेगी?”

“मुझे डर क्या है, वहाँ बहुत लोग हैं!”

लेडी शादीलाल ने शंकित होकर कहा—“लेकिन तेरा अभिप्राय क्या है?”

“यही कि मैं वहाँ रहूँगी!”

“किसलिए?”

“यही मेरी इच्छा है।”

उसने धीरे से कहा—और चल दी। पति पत्नी ने परस्पर एक दूसरे की ओर देखा—लेडी शादीलाल ने कहा—

“यह लड़की चाहती क्या है !”

“मेरी भी समझ में नहीं आता, वे लम्बे-लम्बे डग भरते हुए आगे बढ़े। किरण बराण्डे की सीढ़ियाँ उतर रही थी, उसे रोककर उन्होंने कहा—“किरण, यह ठीक नहीं है, तुम वहाँ मत जाओ।”

किरण ने स्थिर वाणी से कहा—“पिताजी, यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। आपका इससे कोई सम्पर्क नहीं, आपको इस झगड़े में पड़कर अपनी मान-मर्यादा और कुल-प्रतिष्ठा को खतरे में डालने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

पुत्री का यह दृढ़ और स्थिर स्वर सुनकर सर शादीलाल अवाक् रह गये। लेडी शादीलाल ने चिल्लाकर कहा—“जाने दो उसे, देखूँगी, उसके दिमाग में क्या फितूर पैदा हुआ है। परन्तु यदि यह लड़की उस खानदान से सम्बन्ध रखेगी तो हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता।” वे हाँफती-हाँफती पलङ्ग पर लेट गईं। सर शादीलाल परेशान होकर कमरे से बाहर निकल गए।

×

×

×

किरण ने सर ठाकुरदास की कोठी में आकर स्थिर चित्त से सब व्यवस्था ठीक की। नौकर-चाकरों को आवश्यक आदेश दिए। और इस प्रकार रहना आरम्भ कर दिया, जैसे वही चिरकाल से उसकी स्वामिनी है। उसकी गम्भीर मुखाकृति को देखकर कोई यह न समझ सका कि उसका अभिप्राय क्या है।

तीसरे पहर उसने गोवर्धन को बुला भेजा। उससे उसने कुछ परामर्श किया। गोवर्धन उससे सहमत हुआ। परामर्श के बाद सिर हिलाता और मुस्कराता हुआ वह चला गया।



फाँसी से एक दिन प्रथम त्रिभुवनदास जेल में मुलाकात के लिए गए। जाकर उन्होंने देखा—किरण भी वहाँ उपस्थित है। किरण ने आँख उठाकर त्रिभुवनदास को देखा—और फिर आँखें नीची कर लीं। त्रिभुवनदास ने गत एक सप्ताह से उसे देखा नहीं था। उसे वहाँ देखकर उनका मन आशंका और भय से भर गया। वे नहीं समझ सके कि किरण के वहाँ आने का क्या कारण हो सकता है। एक बार उनकी इच्छा हुई कि वे किरण के पास जायँ—उससे कुछ पूछें, परन्तु उनका साहस नहीं हुआ। किसी ने जैसे उन्हें पीछे को ढकेल दिया। वे चुपचाप मुलाकात के क्षण की प्रतीक्षा में नीचा सिर किए बैठ गए।

वन्दिनी के आने पर किरण उठी। यह देख त्रिभुवनदास ठिठक गये। किरण ने चुपचाप वन्दिनी के निकट जा धरती में बैठ, अक्षत रोरी आँचल से निकाल, उसकी चरण पूजा को—फिर पृथ्वी पर मस्तक टेक कर देर तक मौन नीरव निस्तब्ध पड़ी रही। वन्दिनी ने उसे उठा कर छाती से लगा लिया और मृदुस्नेह से उसके मुँह पर हाथ फेरते हुए कहा—“तुम कौन हो इतनी प्यारी मधुर, इतनी कोमल—इतनी पवित्र। कहाँ से इस अभागिनी के अन्तिम क्षणों को सुखदान देने आई हो।

किरण ने कहा—“मैं किरण हूँ, माँ, मुझे आशीर्वाद दीजिए।”

उसने वन्दिनी के वक्ष में सिर छिपा लिया। वन्दिनी ने त्रिभुवन

दास की ओर देखा—परन्तु उन्होंने सिर झुका लिया। इस पर वन्दिनी ने दोनों हाथों में उसका मुँह ऊपर को उठाया और फिर हँस कर, उसकी आँसू भरी दोनों आँखों को चूमकर कहा—“कहो, ओर भी कुछ कहो।”

परन्तु किरण केवल उसके वक्ष पर सिर रखकर रोने लगी। वन्दिनी ने ग़ुलकर हँसते हुए कहा—“अच्छा, अच्छा, मैं समझ गई।” फिर त्रिभुवन की ओर देखकर कहा—“त्रिभुवन बेटा—यहाँ आओ—वहाँ क्यों खड़े हो? ‘यह मेरी प्यारी बहू हैं न?’ वह उत्साह से हँसी, और किरण की आँसू भरी आँखों की कुछ भी परवाह न कर उनके अनगिनत चुम्बन ले डाले।

त्रिभुवन जड़ बने खड़े रह गये। वन्दिनी ने बारम्बार किरण को छाती से लगा कर कहा—“बेटी सुख पाओ, सौभाग्यवती होओ, किन्तु जाओ अब, तुमने जाते हुए प्राणों को आप्यायित कर दिया।” उसने उसका सिर सूँघा। मुँह पर हाथ फेरा और विदा किया।

किरण ने आँसू पोछे। एक बार फिर वन्दिनी की चरण-वन्दना की और बिना त्रिभुवनदास की ओर देखे वह हटकर एक कोने में खड़ी हो गई।

त्रिभुवनदास ने आगे बढ़कर माँ के चरण छुए। और सिकुड़े से चुपचाप खड़े हो गये। उनका चेहरा सूखा हुआ था, और आँखें उन्मादग्रस्त सी हो रही थीं। परन्तु वन्दिनी खुश थी, बहुत खुश। उसने कहा—“बहू को लाकर तुमने अच्छा नहीं किया। भला यह स्थान ऐसी कुसुमकलिका के आने योग्य है। परन्तु त्रिभुवन, आज मैं कितनी सुखी हूँ जानते हो? बहुत दिन बीत गए, तब मेरी आयु किरण के ही बराबर थी। ऐसी ही थी मैं—” वह हँसी—फिर कहने लगी—“मेरे आराध्य देव तुम्हारे पूज्यपिता जब पहिली बार मेरी दृष्टि के सम्मुख आए थे, तब मुझे आज ही के समान प्रसन्नता प्राप्त

हुई थी। फिर उसके बाद आज। बीच के दिन तो भैया, दुःस्वप्न की चर्चा ही बना? जा क्षण भंगुर है, जो बीत चुका, वह चाहे जैसा—वीभत्स, भयानक और असह्य हो, उसकी बात ही क्या? आज वसन्त की बयार ने मेरी आत्मा को छू लिया—मुझे आनन्द से विभोर कर दिया।”

दोनों किरण और त्रिभुवन नीची नजर किए खड़े थे। वह उन्हें देखकर खूब हँसी। वह हास्य आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण था। फिर उसने कहा—“अच्छा, तुम दोनों मेरे निकट आओ। और निकट”। और जब वे दोनों उसके सम्मुख खड़े हुए तो वह बच्चों की तरह ताली बजाकर हँसने लगी। आनन्द से उसका हृदय हिलोरें ले रहा था। फिर कुछ देर बाद उसने कहा—“अच्छा, मेरे बच्चों, अब तुम जाओ। खुश रहो।” और वह एकाएक पीछे को मुड़ी—और चल दी।

संतरी ने पीछे-पीछे जाकर फाटक बन्द कर दिया। एक बार त्रिभुवन ने दबी नजर से किरण की ओर देखा। वह नीची नजर किए खड़ी थी। उन्हें अब भी उससे बोलने का साहस नहीं हुआ। किरण बाहर को चल दी। और उसके पीछे-पीछे त्रिभुवन भी।

किरण स्वर्गीय सर ठाकुरदास की गाड़ी में आई थी, वह चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गई। त्रिभुवनदास को देखकर डाइवर ने अपेक्षा की कि कदाचित वे भी गाड़ी में आ बैठें। परन्तु त्रिभुवनदास एक ओर को पैदल चल दिए।

गाड़ी उनकी बगल में होकर चली गई।

त्रिभुवनदाम पैदल ही चलते चले गए। परन्तु वे अपने निवास पर न जाकर दिन भर इधर-उधर भटकते रहे। दिन भर उन्होंने कुछ नहीं खाया पिया।

सूर्यास्त के बाद उन्होंने घर में प्रवेश किया। गोवर्धन बहुत ही

व्यस्त और चिन्तित था। घटना का वास्तविक रूप वह जानता था, वह मालिक के दुःख और मनोव्यथा से परिचित था।

बहुत आग्रह करने पर भी त्रिभुवनदास ने भोजन नहीं किया। उनका सिर दर्द के मारे फटा जा रहा था।

उन्होंने कहा—“दादा, अब तो मुझे तुम सोने दो, परन्तु कल प्रातःकाल ही हमें यहाँ से चलना होगा, यह घर छोड़ना होगा। तुम अभी सब ठीक-ठीक कर रखना।”

गोवर्धन को यह पूछने का साहस नहीं हुआ कि कहाँ जाना होगा। वह चुपचाप उदास मुँह खड़ा रहा। उस दिन दोनों के मुँह में अन्न का एक दाना भी नहीं गया।



१८

रात ही में त्रिभुवनदास को जोर का ज्वर चढ़ आया। रात बीतने पर भी ज्वर नहीं उतरा। गोवर्धन रात भर उनकी चारपाई की पाटी पर बैठा रहा। परन्तु भोर होते ही त्रिभुवनदास ने चलने की तैयारी कर दी। गोवर्धन का निषेध नहीं चला। निरुपाय आँखों में आँसू भरे गोवर्धन एक गाड़ी ले आया। गाड़ी में अपनी गृहस्थी को लाद, लड़खड़ाते हुए त्रिभुवनदास गाड़ी में जा बैठे। गोवर्धन ने पूछा—“कहाँ चलें भैया?”

“स्टेशन” त्रिभुवनदास ने अर्ध मूर्छित अवस्था में कहा।

गोवर्धन ने पहली ही बार तरुण स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन किया, उसने गाड़ीवान को बालकेश्वर जाने का संकेत किया।

गाड़ी चल दी । और त्रिभुवनदास आँखें बन्द किए, हिचकोले खाते, शरीर और आत्मा की वेदना से विह्वल गाड़ी में एक ओर को झुके हुए चलने लगे । गाड़ी कोठी के पोर्च में आकर खड़ी हो गई । त्रिभुवनदास ने आँखें आधी खोलकर पूछा—“स्टेशन आ गया ?”

और आँखें बन्द कर ली । परन्तु गोवर्धन ने उनकी बात का उत्तर नहीं दिया । वह चुपचाप सीढ़ी चढ़ कर भीतर चला गया । जण भर बाद ही किरण अस्त-व्यस्त दौड़ती हुई आई । दोनों ने सहारा देकर त्रिभुवनदास को गाड़ी से उतारा । एक बार आँख उघाड़ कर उन्होंने किरण को देखा । उसका सुखस्पर्श पाकर उनके प्राणों में एक सिहरन दौड़ गई । उन्होंने कुछ अर्ध जागृत-सी अवस्था में कहा—“कहाँ—मैं कहाँ हूँ ।”

परन्तु किरण ने अधिकार पूर्ण स्वर में कहा—

“चुप रहो, बालो मत ।”

और उसने उन्हें पलङ्ग पर लिटा दिया । फिर डाक्टर प्राणनाथ को फोन किया । प्राणनाथ को लाल लाल आँखों से घूर कर कुछ होठों ही होठों में कहा और आँखें बन्द कर ली ।

डाक्टर प्राणनाथ ने कहा—“डिलिरियम का असर है । सावधान रहना होगा । क्या मैं नर्स भेज दूँ ?”

“नहीं आप मुझे सब समझा दीजिए, मैं सब सम्हाल लूँगी ।”

“यह अच्छा है, तब मैं मध्यान्ह में फिर आऊँगा ।”

डाक्टर ने औषध व्यवस्था की और किरण तथा गोवर्धन प्राण-प्रण से रोगी की सुश्रुषा में जुट गए ।

त्रिभुवनदास की संज्ञा एक बारगी ही लोप हो गई । ज्वर का वेग बहुत बढ़ गया । वे बारम्बार किरण को पुकार कर अस्त व्यस्त मन के उद्गार निकालने लगे । किरण उनके निकट थी पर किरण के लिए उनके प्राण व्याकुल थे । उनके उद्गार सुन-सुन कर किरण कभी

आनन्द विभोर होती, कभी लाज से झुक जाती। वे नहीं जान रहे थे, कि किरण उनके सान्निध्य में है। बहुत बार उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर झटक दिया, बहुत बार उसे टेल कर उठने की चेष्टा की। बहुत बार उन्होंने अपनी लाल-लाल भ्रान्त आँखें उसके मुँह पर गाड़ कर झुनझुना कर पूछा—“तुम कौन हो ?”

दिन बीता, रात बीती, फिर दिन और रात। इस प्रकार पूरे दस दिन व्यतीत हो गए। निद्रा और आलस्य को जीतकर किरण ने रात दिन उनकी सेवा की। गोवर्धन जैसे थकना और निरुत्साहित होना ही नहीं जानता था।

अन्त में उनका परिश्रम सफल हुआ। त्रिभुवनदास विज्वर हुए। हांश में आने पर किरण को पहचान कर उन्होंने मुस्कुरा कर उसका हाथ पकड़ लिया। इसी से किरण निहाल हो गई। उत्साह और आनन्द से वह घर भर में नाचने लगी। उसकी सारी ग्लानि और क्लान्ति जैसे हवा में उड़ गई। डाक्टर के यत्न और सुचिकित्सा से त्रिभुवनदास ने बहुत जल्द आरोग्य लाभ किया।

रात दिन अथक परिश्रम करते देख उन्होंने बहुत बार किरण को रोका। परन्तु किरण ने सुना नहीं। गोवर्धन ने उन्हें बताया कि उनकी रूग्णावस्था में किरण उनकी सेवा न करती तो न जाने क्या होता। सुनकर त्रिभुवन की आँखें नीची हो गई। बोली मुँह से नहीं निकली। उनकी अन्तरात्मा में किरण की जो प्यास थी, उसे वे यत्न से छिपाते। किरण जब उनके पास आकर बैठती तो उसे जाकर आराम करने का आग्रह करते, पर एक क्षण के लिये जब चली जाती तो वे अधीर हो जाते। किरण ने उनका वह वैकल्य देखा। उसे इससे आनन्द हुआ। बहुत बार उसने छिप कर आँसू बहाए, कई बार ऐसा हुआ कि त्रिभुवन ने किरण से कुछ बात करनी चाही। परन्तु कैसे बात करें, कहाँ से उसका प्रारम्भ हो, यह वे न समझ सके।

दिन बीतते चले गए । और अब त्रिभुवनदास रमने में टहलने लगे । शक्ति देने वाला पथ्य हज्म भी करने लगे ।

जैसे त्रिभुवन के मनमें किरण से बात करने की इच्छा होने पर भी वह बात नहीं कर सके । उसी तरह किरण भी बहुत कुछ कहना चाह रही थी पर न कह पा रही थी । बातचीत का प्रसंग स्मरण होते ही—वह वेचैन हो जाती थी । परन्तु वह त्रिभुवनदास को हर समय अपने सम्मुख पाकर प्रसन्न थी । उसे गोवर्धन का बहुत सहारा था । गोवर्धन यद्यपि नौकर था, परन्तु घर के आदमी से अधिक विश्वस्त और सगा था ।

बहुत बार दोनों के मनमें गोवर्धन को मध्यस्थ बनाकर बात करने की इच्छा हुई पर यह भी वे नहीं कर सके ।

परन्तु शरीर में शक्ति संचित होने पर विचार विवेक भी लौट आया । और तब वे इस बात पर विचार करने लगे कि उन्हें अब कबतक वहाँ रहना उचित है । उनका आत्म सम्मान बारम्बार उन्हें लताड़ने लगा । और वे किरण को त्यागकर चल देने का बल तनमन में संचय करने लगे ।



१६

प्रभात का समय था । त्रिभुवनदास चाय पी चुके थे । किरण उनके लिये बागीचे से एक बड़ा लाल रङ्ग का गुलाब बटन के लिये तोड़ लाई थी । आज वह अपना सब शील संकोच छोड़ कर सब बातें साफ-साफ कह डालने का इरादा कर चुकी थी । यह लाल गुलाब ही उसकी भूमिका थी ।

बराण्डे में आकर उसने देखा—त्रिभुवनदास कपड़े पहन कर बाहर जाने को तैयार खड़े हैं। यह देख किरण की आँखों में आशंका भर गई। किन्तु उसने हँस कर कहा—“कहीं जाने का विचार है क्या ? ऐसा क्या काम है, अभी तो कमजोरी दूर नहीं हुई।”

“मैं अब ठीक हूँ किरण, मुझे जाना चाहिए।” त्रिभुवनदास ने नीची आँखें किए भराए स्वर में कहा।

किरण का कण्ठ सूख गया। उसने घबराई वाणी से पूछा—
“कहाँ ?”

त्रिभुवन ने सूखी हँसी हँस कर कहा—“बहुत बड़ी दुनिया है किरण, कहीं भी मुँह छिपाकर दिन काट दूँगा। हाँ, तुम्हारा ऋण तो मैं कभी भी न चुका सकूँगा ?”

“कैसा ऋण ?”

त्रिभुवन ने इसका उत्तर नहीं दिया। दे नहीं सके। सिर्फ उनके होठ काँप कर रह गए। परन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा—“परन्तु यह मत समझना किरण, कि मैं अकृतज्ञ हूँ। जब तक जीऊँगा, तुम्हारे प्रति कृतज्ञ रहूँगा।”

किरण बोली नहीं। वह पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगी।

त्रिभुवन ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा,—“नमस्ते” और उन्होंने डग बढ़ाया।

किरण का मन हाहाकार करने लगा। उसने मरते हुए प्राणी के समान आर्तनाद करके कहा—

“तो तुम मुझे अकेली छोड़ जाओगे, ऐसे तुम हो निष्ठुर ! निर्मम ?”

इस प्राणी में एक पुकार थी। उस पुकार से प्रेरित हो घूमकर त्रिभुवनदास ने देखा—“किरण मूर्छित-सी होकर गिर रही है। उन्होंने दौड़ कर उसे अंक में भर लिया। उनका श्वास वेग से बहने लगा। उन्होंने कहा—“किरण, किरण क्या तुम, तुम.....”

“मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ।”

“लेकिन ।”

“प्रियतम, इतने निष्ठुर न बनो, तुम्हारे बिना मैं जीवित न रहूँगी ।”

“किन्तु किरण, अब तो तुम सब बात जान गई हो ?”

“सब बात जानकर ही मैं यहाँ आई हूँ, माता-पिता ने मुझे त्याग दिया—अब तुम भी त्याग दोगे तो मैं फिर जीऊँगी कैसे, कहो तो ।”

“किन्तु ।.....”

“तुम नहीं जानते, तुम नहीं जानते, प्यार की चोट तुमने नहीं सही ।”

“यह न कहो किरण, तनिक इस हृदय को देखो, यह कैसा जल रहा है ।”

“तो फिर, तुम न अपने पर दया करते हो, न अपनी किरण पर । ऐसा तुम्हारा अभिमान है ?”

“प्रिये, प्रेम के सम्मुख अभिमान का हिमालय भी गलकर बह जाता है । मुझे केवल यही ख्याल है, कि कहीं मैं तुम्हारे साथ अत्याचार न कर रहा होऊँ । और सब कुछ मैं सह सकता हूँ, पर तुम्हारे साथ अत्याचार करना सह नहीं सकता । किसी भाँति भी नहीं ।”

“तो फिर तुम मुझे सहारा दो । अबला नारी को अधिक न तपाओ । मैं तुम्हारी हूँ । एकदम तुम्हारी । तन से मन से और वचन से भी । तुम्हें मुझसे कोई शक्ति दूर नहीं कर सकती ।” वह त्रिभुवन दास पर झुक गई । और क्षण भर में दोनों एक थे ।

वही लाल फूल त्रिभुवनदास के कोट में लगा हुआ, आशा और विश्वास का गहरा रंग बखेर रहा था ।

॥ इति ॥

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

- | | |
|-----------------------|-----------------------|
| ३॥) छिन्न पत्र | २॥) इशारा |
| ४॥) चूड़ियाँ | २॥) जलन |
| ३॥) निर्मोही | ३॥) भँवरा |
| २) लवंग | ४) मञ्जिल |
| ३॥) आहुति | ५॥) नीलम |
| २॥) पागल | २) मजार का दीया |
| २॥) अकेला | ४) पापी |
| ३॥) बसेरा | ३॥) रात और राही |
| ४) कुंकुम | २॥) जापान यात्री |
| ४) पगडण्डी | ३॥) धड़कन |
| ४) अँगड़ाई | ३॥) मुमताज |
| ३॥) खँडहर | ३) पीली कोठी |
| ३॥) पायल | ३) सोलह अगस्त |
| २॥) अनारकली | ५) सूखे पत्ते |
| ३॥) चितवन | २॥) बदरी की रात |
| ४) वहते आँसू | २॥) रक्त की प्यास |
| ४) जय कच्छ | २) नरमेध |
| २) नीलमणि | ३॥) दो किनारे |
| २॥) पपीहा बोले आधीरात | २) मन्दिर की नत्तेकी |
| १॥) अदल-बदल | २॥) चौरङ्गी |
| २॥) सहारा | २॥) आशियाना |
| ३॥) कालीघटा | ३॥) ललकार |
| ३॥) मकड़ी का जाल | २॥) साँवरिया |
| २॥) तारों भरी रात | ३॥) काजल |
| ३) आवारा | २॥) कागज के फूल |
| २॥) महाकवि साँड़ | १॥) मेरे राम का फैसला |

- | | |
|---------------------------|-----------------------------|
| २॥) चाँदनी | १॥॥) रोटी |
| ३॥) जवानी का नशा | २॥) मनोरमा |
| १॥॥) राजपूत नन्दिनी | २) प्यासी तलवार |
| ३) विसवी वीराङ्गना | २॥) हाहाकार |
| २॥) बागी की वेटी [जन्त] | २) नदी में लाश |
| ४) चिता की राख | १॥॥) बड़े चाचाजी |
| १॥) होटल में खून | १॥) उजड़ा घर |
| २॥) तथागत | २) महामाया |
| १॥॥) गरीब | १॥) नर और नारी |
| १॥) साहसी राजपूत | २॥) पापी |
| ३॥) घर की लाज | १॥) बचपन की कहानियाँ |
| २॥) प्यासी आँखें | २॥) त्याग |
| १॥॥) ठोकर | ३) आँधिया |
| २॥) बन्धन | २॥) ममता |
| ३) जला डालो | ३॥) भारत सन् ५७ के बाद |
| २॥) स्वास्थ्य और व्यायाम | २॥) मिट्टी बोल उठी |
| ३॥) भाँसी की रानी | २) विचित्र प्रबन्ध |
| १॥) छत्रपति शिवाजी | १॥) अमर राठौर |
| ३॥) वीर दुर्गादास | १॥) नारी का मूल्य |
| २॥) प्यास | २॥) कसक |
| २) मशाल | १॥) जीवन-दान |
| १॥) चीखती दीवारें | २॥) अजेयतारा |
| ३॥) मेजर की पत्नी | २॥) विषकन्या |
| २॥) पानी पाँड़े | २) मिस्टर तिवारी का टेलिफोन |
| २) बेचारे मुन्शीजी | ३॥) प्यार और पैसा |

पता—चौधरी एण्ड सन्स, नीचीबाग, बनारस ।

